TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186249

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H335 | M49Sa Accession No. G.H.147

Author मीनू मसानी

Title समाजवाद पर पुनर्विचार

This book should be returned on or before the date last marked below.

समाजवाद पर पुनर्विचार

[संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक

मीनू ममानी

अनुवादक

'प्रशान्त'

ज्योतिर्लोक

मन्दसौर (मध्य भारत)

अनूदित राजनैतिक साहित्य-ज्योति की प्रथम रश्मि

प्रकाशक

ध० म० सेठिया

'ज्योतिर्लोक'

मन्दसौर (मध्य भारत)

प्रथम हिन्दी संस्करण

दिसम्बर १९४५

मूल्य बारह आने

मुद्रक

सी० एम० शाह

मॉडर्न प्रिन्टरी,

खजूरी बाजार, इन्दौर।

(मध्य भारत)

विषय-सूची

१–प्रकाशकीय वक्तव्य	...	...	७
२–द्वितीय संस्करण की भूमिका	...	...	९
३–प्रथम संस्करण की भूमिका	...	...	२६
४–भ्रामक-प्रभात	...	...	२७
५–नया दिन	...	...	५७
६–अध्ययन के लिये सुझाव	...	...	९०
७–विशिष्ट-शब्द-कोष	...	...	९३

प्रकाशकीय वक्तव्य

'ज्योतिर्लोक' की इस प्रथम रश्मि को पाठकों के हाथों में रखते हुए आज हमें अत्यधिक हर्ष है, किन्तु साथ ही थोड़ा-सा संकोच भी। यह एक ऐसी संस्था है जो केवल व्यवसायिक ही नहीं है बल्कि जिसके अपने उद्देश्य हैं और जो आदर्शों से अनुप्राणित भी है। साधन और पूर्व-अनुभव अल्प, मँहगाई और नियंत्रणाज्ञाओं की विघ्न-बाधाएँ अनेक--इन्हीं में से हम अपना मार्ग निकाल रहे हैं। अतएव त्रुटियाँ हो सकती हैं, न्यूनताएँ रह सकती हैं, जिनके लिये विवश होते हुए भी हम क्षमा प्रार्थी हैं।

मौलिक साहित्य के साथ ही साथ अन्य-अन्य भाषाओं में प्रतिदिन प्रकाशित होते रहने वाले समसामयिक एवं गम्भीर विचारात्मक साहित्य से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध करने और उसे सस्ती से सस्ती कीमत पर पाठकों के हाथों में पहुँचाने के प्रारम्भिक उद्देश्यों से हमने कार्यारम्भ किया है--यह जानते हुए कि हमारी शक्ति अल्प, साधन मर्य्यादित और क्षेत्र असीम है!

वादों, वर्गों, सम्प्रदायों और मत-मतान्तरों के इस युग में समसामयिक साहित्य का प्रकाशन भी पूरी जोखिम उठाना है। Party label कदम-कदम पर तैयार है। पर हमें तटस्थ रहते हुए जनता को परस्पर विरोधी और विभिन्न विचार धाराओं से अवगत कराना है। हमारी स्थिति कमल की स्थिति है। हम चाहते हैं कि जनता देखे, परखे, और अपनी विचार-माला के रत्न-कण आप ही चुन ले।

दो शब्द प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में भी ! बम्बई के भूत पूर्व नगरपति मसानीजी की इस पुस्तक के अंग्रेजी में दो संस्करण निकल चुके हैं--हिन्दी पाठकों को यह दूसरे परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण का अनुवाद मिल रहा है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों में इस पुस्तक ने खूब ही खलबली पैदा की है और उन्हें मान्य-मत पर कम से कम एक पुनर्दृष्टि डालने के लिये विवश किया है। आवश्यक नहीं कि इसके विचार हमारे विचार हों, अथवा पाठक इससे शत-प्रतिशत सहमत ही हों। मसानीजी के ही शब्दों में यह 'समस्याओं के लिये एक व्यक्तिगत पहुँच है।' इस बुद्धि-प्रधान युग में ठोस तर्कों को कसौटी पर कसना ही होगा--यह बात दूसरी है कि आपकी कसौटी पर वे कैसी उतरती हैं ?

हम पद्मा पब्लिकेशन्स लि० बम्बई के आभारी हैं, जिनके यहां से इस पुस्तक के अंग्रेज़ी मूल संस्करण प्रकाशित हुए हैं, और जिनका हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। साथ ही उन कई मित्रों के भी चिर-कृतज्ञ हैं जिनकी अमूल्य सहायता के बिना इस पुस्तिका का प्रकाशन सम्भव न होता।

हिन्दी-सेवा की याने कि आत्म-सेवा की बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ ले कर हम चल पड़े हैं, किन्तु सारी योजना का साफल्य पाठकों के हाथ में है—यदि उन्होंने हमें अपनाया, हमारे प्रयासों को सराहा, हमारी योजनाओं में सहयोग दिया, तभी हमारी गति है !

—प्रकाशक

द्वितीय संस्करण की भूमिका

इस छोटी-सी पुस्तिका के प्रथम संस्करण का, मान्य-मत से इसके विरोध को देखते हुए, मैंने इसके लिये जो उम्मीद करने का साहस किया था उसकी अपेक्षा अधिक व्यापक और उत्साह-पूर्ण स्वागत हुआ। अखबारी समालोचनाओं और व्यक्तिगत पत्रों को, विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने की अनुमति के लिये की गई प्रार्थनाओं को और जनता की मांग को, जिससे प्रस्तुत संस्करण आवश्यक हो गया है, समान रूप से देखते हुए, समाजवाद पर पुनर्विचार ने उन लोगों के लिये तो, जिनके विचार रूढ़िवादी समाजवाद और पूँजीवाद से यकसाँ ही दूर हट रहे थे, बुरी तरह महसूस हो रही जरूरत पूरी की हो, ऐसा जान पड़ेगा।

प्रस्तुत पुस्तक किसी सीमा तक उस उद्देश्य की पूर्ति करने का भी दावा कर सकती है जिसको ले कर यह आरम्भ में लिखी गई थी—उन प्रश्नों पर वाद-विवाद को उत्तेजना देना जो निरंतर अधिकाधिक महत्त्व के हो रहे हैं। उस वाद-विवाद के दरमियान कुछ आलोचकों ने इस पुस्तिका के दूसरे भाग में दिये गये सुझावों की न्यूनताओं और अपूर्णताओं के विषय में शिकायत की है। इसका उत्तर द्विविध है। प्रथम, किसी एक व्यक्ति से रूढ़िवादी समाजवाद की जगह एक पूर्ण वैकल्पिक 'वाद' ले कर आगे आने की आशा नहीं की जा सकती और मैं निश्चय ही ऐसा करने नहीं चला था। दूसरा यह है कि

आखिर समाजवाद पर पुनर्विचार एक पचपन पृष्ठों का निबन्ध ही तो था और उन सब प्रश्नों का समावेश उसमें कर सकना संभव नहीं था जिनका उत्तर दिया जाना आलोचकगण पसन्द करते।

पुस्तक पर हुए वाद-विवाद ने एक या दो ग़लतफ़हमियाँ प्रकट की हैं। इनमें से एक यह है कि मैंने गांधीजी के 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत को मान लिया है। जो मैंने किया था (प्रथम अंग्रेजी संस्करण के पृष्ठ ५३ तथा ५४ पर) वह तो स्पष्ट रूप से यह कहना था कि मैं ट्रस्टीशिप को सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण की पद्धति के विकल्प की तरह नहीं मानता, किन्तु मैं उसे परिवर्त्तन-काल के दरमियान उपयोग किये जाने वाली योजनाओं में से एक के रूप में महत्व की समझता हूं। दूसरी ग़लतफ़हमी यह है कि मैंने व्यवस्थापकीय क्रान्ति (The Managerial Revolution) के पक्ष में बर्नहम की तर्क-सरणी मान ली है। यहां दोहरी ग़लत धारणा हुई है। पहले तो स्वयं बर्नहम ही 'व्यवस्थापकीय राज्य' का पक्षपात नहीं करते। वे केवल उसके प्रादुर्भाव की सम्भावना से सावचेत करते हैं। उन सम्भावनाओं से सम्बन्धित उनकी राय में शरीक होने की ओर मेरा झुकाव ज़रूर है, पर यह सिर्फ़ इसलिये कि मैं इस बारे में अत्यन्त सतर्क हूं कि कम से कम हिन्दुस्तान 'व्यवस्थापकीय क्रांति' से बच जाय और इसीलिये मैंने गांधीजी की देन के अध्ययन का सुझाव पेश किया है, इस आशा से कि शायद वह बीच के व्यवस्थापकीय गड्ढों (Cul-de-Sac) से हमें बचा सके; यह निश्चय ही इसलिये कि मैं एकतन्त्र-विरोधी हूँ, कि मैं वर्त्तमान कालीन रूस को एक समाजवादी राज्य के रूप में मानने से इन्कार करता हूँ।

प्रथम संस्करण के प्रकाशन के बाद ही प्रोफेसर एम्० एल्०

दंतवाला का गांधीवाद पर पुनर्विचार * प्रकाशित हुआ—एक अध्ययन जिसने उस विचार-धारा को और अधिक सुनिश्चित तथा पुष्ट किया जिसे मैंने विचार-विनिमय के लिये सामने रक्खा है। मेरी पुस्तिका का उत्तर होने का दावा कर के बाद में दो अन्य प्रकाशन हुए। दोनों साम्यवादी पक्ष से निकले हैं, यद्यपि साम्यवादियों ने 'समाजवादी' हो कर तथा कॉमरेडों ने 'श्रीयुत्' हो कर इसे ढक लेने के स्वाभाविक प्रयत्न किये हैं। मीठे विरोध के साथ एक व्यक्ति द्वारा माना गया कि मैंने अपने आपका सही रूप प्रकट कर दिया है तथा फिर भी एक दूसरे व्यक्ति के द्वारा यह कि मैंने उत्तर को आमन्त्रित किया है। इन दोनों 'उत्तरों' की कमज़ोरी इस बात में रही कि साम्यवादियों ने तर्क को निन्दा समझ लेने की ऐसी आदत डाल ली है कि एक से दूसरे को अलग पहचानने की उन्होंने सारी क्षमता ही खो दी है। यह शायद अनिवार्य है। क्योंकि उनका मामला ही इतना कमज़ोर है; और इसलिये वे चिरकाल से प्रतिष्ठित युक्ति-'व्यक्तिगत' (ad hominem)—का आश्रय ले लेते हैं। लगभग एक ही साँस में मुझ पर एक फासिस्ट, एक ट्राट्स्की-पंथी और पूंजीवादियों के एक एजेण्ट होने का इलज़ाम लगाया गया है। स्वर्गीय गेब्रील द' एनन्ज़िओ ने भी एक बार विरोध किया था: "मैं भी एक ही समय में दो स्थानों पर नहीं हो सकता!" उतनी ही नम्रता से विरोध करने की इजाज़त मुझे हो कि एक ही समय में सभी कुछ—एक ट्राट्स्की पंथी, एक पूंजीवादी और एक फासिस्ट होना, मेरी सामर्थ्य से भी परे है!

साम्यवादी 'जवाबों' पर अधिक ध्यान देना ज़रूरी नहीं है।

---

* मूल अंग्रेजी पुस्तक Gandhism Reconsidered का यह अनुवाद 'ज्योतिर्लोक' का द्वितीय प्रकाशन है।

उनकी अधिकतम समृद्धि के दिन उनके गुज़रे ज़माने में निहित हैं और महादेव देसाई के हरिजन के अंतिम अंक में ९ अगस्त १९४२ का जिसे वे सम्पादन करने को थे–लिखे शब्दों से अधिक अच्छा कोई स्मृति-लेख (epitah) उनके लिये तैयार नहीं किया जा सकता:

> "मुझे खुशी है कि साम्यवादियों ने अपनी आज़ादी हासिल कर ली है। यदि उन्होंने इसके लिये युद्ध-प्रयत्नों के समर्थन की क़ीमत न चुकाई होती, तब भी वे इसके अधिकारी थे। किन्तु मुझे ताज्जुब है यदि उन्होंने हिन्दुस्तान की आज़ादी हासिल की हो। उन्होंने अपने देश की आज़ादी को ही नहीं दुत्कार दिया है बल्कि अपने निज के सिद्धांतों को भी।"

प्रोफेसर हेरोल्ड जे० लास्की भी, जिन्होंने अपने ही देश में साम्यवादी दल के साथ मेल स्थापित करने के प्रयत्न में निष्फल दौड़-धूप में वर्षों ख़र्च कर दिये हैं, अपनी मार्क्स और आज (Marx and today) में, "साम्यवादी दल द्वारा यहां और अन्यत्र की गई मूर्खताओं, उसकी बहानेबाज़ियों, षड्यन्त्र के लिये उसका उन्माद, व्यक्तिगत लांछना के लिये उसकी लोलुपता, सत्य के व्यवहार में उसकी मितव्ययिता" के लिये लिखने को विवश हुए हैं।

शायद प्रत्युत्तर देने का एकमात्र गम्भीर प्रयत्न एक साप्ताहिक पत्र में किसी एक प्रोफेसर द्वारा ही किया गया था। अत्यधिक विद्वान और एक तेज़ और मार्मिक लेखनी के योग्य लेखक होने के कारण तथा एक दल-सदस्य न हो कर सिर्फ़ एक 'सहयात्री' होने के कारण, उन्होंने उस संयत भाव और

बारीकी से लिखा है कि जो शत-प्रतिशत साम्यवादी खो चुके हैं। चूँकि उनकी तर्क-पद्धति इस देश के साम्यवादी दल के बुद्धि-जीवी सहयात्रियों की इतनी अपनी और लाक्षणिक है, कि मैं उनकी समालोचना पर ज़रा कुछ विस्तार से विचार करना चाहता हूँ। और यदि किसी को उस दृष्टिकोण के विषय में सन्देह ही हो, जिसे ले कर विद्वान् प्रोफेसर सचमुच में विषय-प्रवेश करते हैं तो मैं उन्हें ६ जुलाई १९४४ के लोक-युद्ध का निर्देश करूँगा, जिसमें, राष्ट्रीय-हितों को छिन्न-भिन्न करने के अपने प्रयत्नों के लिये इतने प्रसिद्धि प्राप्त पत्र को, मुबारकबादी के एक सन्देशे के दरमियान, उन्होंने यह आश्चर्य्य जनक बात कही: "लोक-युद्ध हिन्दुस्तान के सर्व श्रेष्ठ राष्ट्रीय विचारों का प्रतिनिधित्व करता है"!

उक्त समालोचक ने मुझे अपने तथ्य चुनने और उनके लिये साम्यवाद के खुले विरोधियों के पास जाने का दोष दिया है। हमें देखना चाहिये कि इस आरोप में कितना सत्य है। सभी प्रकार के पूँजीवादियों, फासिस्टों और समाजवाद-विरोधियों के प्रमाणों से बचने का जहां तक हो सका मैंने प्रयत्न किया है। यदि मैंने सोवियत् रूस को दोषी ठहराया है तो यह स्वयं समाजवादियों और साम्यवादियों की ज़बानी ही है। प्रत्येक व्यक्ति जिसका प्रमाण मैंने उद्धृत किया है, उदाहरणार्थ, मेक्स ईस्टमेन, लुइफिशर, यूजेन लायन्स, एन्ड्रे गाइद, आर्थर कोइस्लर और फ्रेदा उत्ले, दृढ़ समाजवादी रहे हैं, इनमें से एकाधिक व्यक्ति साम्यवादी दल के सदस्य भी रह चुके हैं और वे सब ही प्रारम्भिक अवस्था में सोवियत् क्रांति के गहरे मित्र और प्रशंसक थे। फिर भी यदि यह वांछित है कि श्री विन्स्टन चर्चिल सरीखे, आज के रूस के तथा स्तालिन् के इतने साह-

सिक मित्र का प्रमाण उद्धृत किया जाय, तो २४ मई १९४४ को प्रतिनिधि-सभा (House of commons) में व्यक्त की गई ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री की निम्नांकित उक्तियों को पुनर्उद्धृत करने में मुझे बड़ी खुशी है :

"सोवियत् रूस में गहरे परिवर्त्तन हो गये हैं। साम्यवाद का ट्राट्स्की वाला रूप पूर्णतः मिटा दिया गया है। ·····रूसी-जीवन के धार्मिक अंग ने आश्चर्यजनक पुनर्जन्म पा लिया है। रूसी-सेना का अनुशासन और सैनिक शिष्टाचार अजेय है। वहां एक नया राष्ट्रीय-गीत है, जिसका संगीत मार्शल स्तालिन् ने मुझे भेजा, जिसे मैंने चाहा कि वी० वी० सी० नाना अवसरों पर बजाए।····· कॉमिण्टर्न नष्ट कर दी गई है।····· ये उन धारणाओं से जो कुछ वर्षों पूर्व थीं, प्रत्यक्ष विदा लेना है। (टोरी दल की करतल-ध्वनि)"

प्रोफेसर महोदय ने यह सुझाव देते जाने की बड़ी कृपा की है कि, "हमारे लेखक के लिये श्री ईस्टमेन की अपेक्षा ल्यूसीं लौरेट एक अधिक अच्छे पथ-प्रदर्शक हुए होते।" सीखने की, और यदि ज़रूरत हो अपने को सुधार लेने की हर इच्छा से मैंने लौरेट की पुस्तक मार्क्सवाद और प्रजातन्त्र (Marxism and democracy) को देखा, चूँकि ल्यूसीं लौरेट निस्सन्देह मार्क्सवाद के विद्वानों और मार्क्स के श्रेष्ठ टीकाकारों में से एक हैं। लेकिन देखिये तो सही कि मुझे और पाना ही क्या चाहिये, सिवा इसके कि लौरेट मेरी पुस्तक के प्रथम भाग की दलील को पूर्णतः स्वीकार करते हैं और समालोचक को जो कुछ भी कहना था, उन सभी का खंडन करते हैं। उस पुस्तक से यहां

मात्र एक उद्धरण, उस भाषा में रूस का वर्णन करते हुए जिसे व्यवहृत करने में मैं हिचका था, प्रस्तुत है :

"यद्यपि रूस की आर्थिक प्रणाली बहुधा 'राजकीय पूँजीवाद' कही गई है और यद्यपि कार्ल कौत्स्की द्वारा व्यवहृत शब्द 'राजकीय गुलामी' हमें अधिक माकूल खिताब जँचता है, हमारी राय में वर्त्तमान रूसी-शासन गुलामी, या भूमि-दासत्व, या पूँजीवाद नहीं है, बल्कि तीनों ही कुछ-कुछ हैं। मज़दूर जो कि, अपने निवास-स्थानों से और अक्सर अपनी काम करने की जगहों से गृह-यात्राधिकार-पत्रों (Domestic passports) द्वारा बँधे हुए हैं--जागीरी दास जैसे देवोत्तर भूमि से-उनकी समस्त आज़ादी के बेरोक और पूर्ण दमन के कारण, वह गुलामी और भूमि-दासत्व से सम्बन्धित है। आर्थिक श्रेणियों और क़ानूनी रूपों की बहुत बड़ी संख्या को टिकाये रखने के कारण वह पूँजीवाद से सम्बन्धित है। फिर भी इनमें से किसी भी प्रणाली से वह मूलतः भिन्न है।"

समालोचक द्वारा, तथ्य की तीन बातों पर जो काफ़ी महत्व की हैं, मुझे सुधारने का प्रयत्न किया गया था--राजनैतिक जनतंत्र का अभाव, श्रमिकों के नियन्त्रण का अभाव और आर्थिक असमानताओं का उत्थान। यह उज्र किया गया था कि मेरे लिये यह अनुचित था कि, उदाहरणार्थ, खेतों और कारखानों में हुई उन सैकड़ों-हज़ारों प्राथमिक सभाओं का ज़िक्र न करना जिनमें कि १९३६ के विधान पर उसकी आखिरी मंजूरी के पहले वाद-विवाद हुआ था। सुविज्ञ प्रोफेसर महोदय के लिये यह लोकतंत्र का प्रमाण है। यह हक़ीक़त कि अधिकारान्वित दल के अतिरिक्त किसी राजनैतिक दल के क़ायम रहने की इजाज़त न तो

थी, न है, कि उन सैकड़ों-हज़ारों सभाओं में से किसी एक में भी वह विधान अस्वीकृत अथवा संशोधित नहीं किया गया था, और कि ये सभाएँ और कुछ नहीं केवल स्तालिन् के शासन का डंका पीटने के लिये प्राचारिक सभाएँ थीं, विद्वान् प्रोफेसर के अनुसार अप्रासंगिक बातें हैं। यदि मैं अदब के साथ ज़ोर दे कर यह कहूँ कि जो बात महत्व की है वह सभाओं की संख्या नहीं है, बल्कि यह कि वे स्वतन्त्र सभाएँ होनी चाहियें जहाँ खुली बहस और वह (साम्यवादियों के लिये) अनिष्ट घटना—विरोध—तक भी सम्भव होना चाहिये।

प्रोफेसर महोदय ने श्रमिकों के नियंत्रण के अभाव का यह कह कर विरोध करना चाहा कि औद्योगिक ट्रस्टों के संचालक "कारख़ानों में उत्पादन समितियों की दया पर" निर्भर हैं। मुझे डर है कि यहाँ प्रोफेसर बुरी तरह पिछड़े हुए हैं। यह सच है कि कई वर्षों पूर्व कारख़ानों की समितियाँ रही थीं, किन्तु वे बहुत ही अधिक 'अशांति' उपजाने लगीं और इसलिये वे 'लाल' संचालकों के साथ ही समेट ली गई थीं। आज, रूसी-मजदूर-संघ जर्मनी में डॉ० ले के 'श्रमिक-मोर्चे' के प्रतिरूप हो गये हैं-और उनका एकमात्र प्रयोजन उत्पादन की रफ़्तार तेज़ करने के साधनों के रूप में काम करना है।

तीसरा उज्र, रूस में आर्थिक असमानताओं के पुनः स्थापन पर मेरे ज़ोर देने तथा स्टेखेनोवी आंदोलन के प्रसंग पर था। एक अरुचिकर घटना को इस बहाने से टालते हुए, कि उनकी ४५०० शब्दों की समालोचना में स्टेखेनॉव-पद्धति के विचार-विनिमय के लिये गुंजाइश नहीं थी, समालोचक महोदय रूसी आय के अंक प्रस्तुत करते चले गये, जिन्होंने उनके विचार में मेरी तर्क-सरणी का प्रतिवाद किया है। वास्तव में उन्होंने सिर्फ़,

मेरे कथन के लिये और भी प्रमाण जुटा दिये। अप्रेल १९४२ के 'जर्नल ऑफ़ इकॉनॉमी' में से श्री बर्गसन को उद्धृत करते हुए, उन्होंने बताया कि १९३४ में मज़दूरी उपार्जन का प्रसार लगभग उतना ही विस्तृत था जितना कि अन्य देशों में। यह ठीक वही है जो मैंने कहा था।

इस सम्बन्ध में, यह कहना शायद अप्रासंगिक नहीं होगा कि एक से अधिक पत्र-प्रेषकों ने पूछा है, कि मेरे इस कथन का, कि सरकारी ऋण-पत्रों पर ७ प्रतिशत ब्याज मिलता था, वेण्डेल विल्की के 'एक ही विश्व' (One world) में बिना ब्याज के ऋण-पत्रों के प्रसंग से कैसे मेल बिठाया जाय। मैं सिर्फ़ अनुमान कर सकता हूँ कि श्री विल्की बिना ब्याज के विशेष युद्ध-ऋण-पत्रों की बात कह रहे थे। इस बात के लिये कि युद्ध के फूट निकलने के समय सरकारी ऋण-पत्रों में लगाई साधारण पूँजी पर ७ प्रतिशत मिलता था, कोई संदेह नहीं हो सकता। उस बात के लिये अनेक अधिकृत व्यक्तियों में और कोई नहीं, सोवियत् साम्यवाद के वे स्तम्भ—सिड्नी और बीट्रिस वेब—हैं जो सरकारी बचत बैंकों (State Savings Banks) के "ढाई करोड़ जमा कराने वालों" का भी ज़िक्र कर जाते हैं जो कि "आठ प्रतिशत की दर के ब्याज द्वारा और आय-कर, उत्तराधिकार-कर और विविध स्टाम्प-करों को जमा कराने की पूर्ण छूट द्वारा प्रोत्साहित किये जाते हैं।"

तथ्यों को मिथ्या रूप देने और मार्क्सवादी सिद्धांतों को विकृत करने के अनुरूप ही, जो कि अभी कई वर्षों से रूस में होते जा रहे हैं, यह दावा किया गया है कि वह सिद्धान्त-वाक्य "प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार" साम्यवाद से सम्बन्ध रखता है, जब कि : "प्रत्येक को उसके श्रमानुसार" समाजवाद

की विशिष्टता है और इस जांच द्वारा विचार किये जाने पर रूस में समाजवाद स्थापित हो चुका है। समाजवाद की यह परिभाषा निस्सन्देह समाजवादी आदर्श का व्यभिचरण है और उसे चारों ओर फैल रही यथार्थताओं की पंक्ति में ला रखने का प्रयास है। किन्तु यह नग्न दावा भी आज रूस में और अधिक क़ायम नहीं रखा जा सका है। उपार्जन श्रम के अनुसार नहीं हैं यह एरिक स्ट्रौस की सोवियत् रूस के निम्नोक्त प्रकरणों से बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है:

"प्रसिद्ध स्टेखेनोवियों के लिये ८००, १०००, १२००, और अधिक रूबल प्रति मास के वेतन असाधारण नहीं हैं और सोवियत समाचार पत्रों में मुलाक़ातों के दरमियान 'श्रम-वीर' (Heroes of Labour), मोटर साइकलों और मोटरों, ग्रामोफोन और बेतार-यन्त्रों, नृत्य में अथवा विदेशी भाषाओं में निजी शिक्षण और अनेक दूसरी अच्छी चीज़ों के सम्बन्ध में बातें करते हैं जिन्हें कि वे अब उपभोग कर पाते हैं.....

"यह वेतन-पद्धति साफ़ तौर से समाजवाद के उस सिद्धान्त का खंडन करती है, जो कि 'प्रत्येक को उसके श्रमानुसार' नारे द्वारा व्यक्त किया गया है। यह कहा जा सकता है कि इस काम की ज़्यादा उपयोगिता ने राज्य द्वारा किये गये अतिरिक्त खर्च को उचित ठहराया। किन्तु 'विपरीत अतिरिक्त उपयोगिता' (reversed marginal utility) का यह अनोखा सिद्धांत, ब्याज और मुनाफ़े के अनेक समर्थनों से सिर्फ़ संदेह-जनक रूप से मिलता ही नहीं है, बल्कि किये हुए वास्तविक श्रम की मिक़दार के हिसाब से मज़दूरी चुकाने के समाजवादी सिद्धांत से, किसी भी हालत

में इसका ज़रा भी सादृश्य नहीं है। इस बात का देखते हुए कि मज़दूरी के विभिन्न माप-दंड के आधार पर 'फुटकर काम', श्रम की मात्रा और उत्तमता में भिन्नताओं को पहले ही गिन लेता है, दल-नायक को दिया जाने वाला पारितोषिक बिना किसी प्रतिफल के दिया जाता है—यदि उसके काम की सामाजिक उपयोगिता उसके मातहतों के काम को तेज़ रफ़्तार देने और औसत मज़दूर को दिये जाने वाले फुटकर दरों को नीचा करने में न रहती हो। अत्यन्त ही बोझिल हालतों में, सर्वसाधारण फुटकर काम के बहाने से समाजवाद की उपलब्धि के परिपूर्ण हो जाने का दावा करना, और कुछ नहीं सिर्फ़ समाजवाद और श्रमिक वर्ग के प्रति पहुंचाई गई हानि का और अधिक अपमान करना है···

" चतुर श्रमिकों की एक अल्प संख्या यदि सम्मिलित पदार्थ-कोष में चन्दा प्रदान करती है जो कि उनकी संख्या से मिलना चाहिये उससे १० या २० या १०० प्रतिशत भी अधिक होता है, जब कि इस अल्प संख्या का प्रत्येक सदस्य एक साधारण कारीगर की अपेक्षा ३००, ५०० अथवा १००० प्रतिशत की सीमा तक भी अधिक खर्च-सामग्री पाता है,—खर्च-सामग्री की शेष राशि, श्रमिकों की बहु-संख्या को उनके द्वारा 'किये गये श्रम के अनुसार' पुरस्कृत करने के लिये काफी नहीं होती···'

" श्रमिक वर्ग के अदक्ष स्तर निश्चय ही कुछ न कुछ कम पाते हैं और स्टेखेनोविचों और औद्योगिक व्यवस्थापकों के ऊपरी स्तर—शासन करने वाली नौकरशाही के सदस्यों का तो कहना ही नहीं—अपने श्रम के द्वारा जितने अधिकृत हैं उससे काफ़ी अधिक पाते हैं।"

सोवियत् समाचार पत्रों में प्रकाशित अंकों के तारतम्य और विश्लेषण के आधार पर, १९३९ में लिओ ट्राट्स्की द्वारा इस प्रथा का नतीजा यह होना बताया गया था कि, "सोवियत् जन-संख्या के ऊपरी ११ प्रतिशत अथवा १२ प्रतिशत को अब राष्ट्रीय आय का लगभग ५० प्रतिशत प्राप्त हुआ। यह विभिन्नता संयुक्त-राज्य (अमेरिका) की अपेक्षा अधिक तीव्र है, जहां जन-संख्या के ऊपरी १० प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का लगभग ३५ प्रतिशत मिलता है।"

इस नये सामाजिक स्तरीकरण की राजनैतिक झलक, रूसी राज्य के वाह्य अंगों, जो भी थोड़े से मूल्य के वे हैं, की रचना में पाई जाती है। एरिक स्ट्रोस के अनुसार, "अन्तिम सोवियत्-कांग्रेस (दिसम्बर १९३६) के २०१६ प्रतिनिधियों में से, ९३७ (या ४७ प्रतिशत) केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य, विशेषज्ञ और साहसिक-उद्योगों के संचालक, 'दल' (साम्यवादी) और मजदूर-संघों के जवाबदार कर्मचारी गण और उच्च सैनिक अधिकारी थे; ५८२ प्रतिनिधि (या २९ प्रतिशत) स्थानीय सोवियतों के, सामूहिक और सरकारी खेतों के सभापति आदि थे; ४३० प्रतिनिधि (या २१ प्रतिशत) स्टेखेनोवी थे; और ६० (या ३ प्रतिशत) साधारण मजदूर और कृषक थे।"

मैं नहीं सोचता कि इस बात पर और अधिक सिर खपाने की जरूरत है। जो उपेक्षा करना नहीं चाहता हो, उसके लिये वहां देखने को गहरी और बढ़ती हुई आर्थिक और सामाजिक असमानताएं मौजूद हैं। रूस में आज जिस क़िस्म का समाजवाद क़ायम है वह ल्यूसीं लौरेट को उद्धृत करें तो (जिनका कि प्रोफेसर महोदय ने इतनी कृपापूर्वक मुझे हवाला दिया है),

केवल उन्हीं लोगों को आकर्षित कर सकता है, जो तर्क की जगह अन्ध-आज्ञापालन को पसन्द करते हैं, सिर्फ उन प्रमत्त दिमाग़ों को जो कहे जाने वाले सोवियत् स्वर्ग के विषय में कही गई प्रत्येक झूठ पर विश्वास कर लेने को उद्यत हैं, सिर्फ़ उन लोगों को, जो उन निर्वाचनों का स्वतन्त्र कहे जाना सुन कर चकित नहीं हो जाते, जिनमें कि सिर्फ़ सरकारी उम्मीदवार ही होते हैं और जो खूनी आतङ्क की हुकूमत के नीचे किये जाते हैं, सिर्फ़ उन लोगों को, जो एक ऐसी शासन-पद्धति का 'आदर्श प्रजातन्त्र' कहे जाना सुन कर आश्चर्य प्रकट नहीं करते, जिसमें कि सिर्फ़ एक दल अधिकारान्वित होता है और दूसरे सब जेलों में होते हैं—सिर्फ़ उन लोगों को, जो कि उस देश के नाम पर दावा किये गये 'समाजवाद के निर्माण' को सुन कर स्तब्ध नहीं रह जाते, जिसमें कि 'राजनैतिक एकान्त-वासों (polit-isolators) में बीस वर्षों से समाजवादी विचार-धारा का निषेध किया गया है, पीड़न किया गया है और गला घोंटा गया है और आख़िर में, जो राजनैतिक बन्दियों से बल-पूर्वक कराई गई उन स्वीकारोक्तियों को सुन कर हैरान नहीं हो जाते जो कि ज्ञात और प्रमाणित तथ्यों के स्पष्ट रूप से विरोध में हैं।"

यह दर्दनाक हाल है—हमारे उन प्रोफेसर का, और उन अनेक बुद्धिजीवियों का (सौभाग्य से उनकी संख्या अब घट रही है), जिनके कि उक्त प्रोफेसर आज हिंदुस्तान में एक ठीक प्रतिनिधि हैं। उन्होंने (बुद्धिजीवियों ने) अक्टूबर-क्रांति और उसके परिणामों पर अपनी उम्मीदें बांध रक्खी थीं। उन्होंने उस क्रांति को अपनी एक के बाद दूसरी बहुविध स्थितियों में लौटते देख लिया है। एक बना-बनाया वैकल्पिक 'मक्का' न-पा कर के, जिस ओर कि घूमा जाय, वे शुतुरमुर्ग की तरह घट-

नाओं का सामना करने से बचना चाहते हैं ताकि वे अपने पुराने फ़ायदों से चिपटे रह सकें। लिडेल हार्ट लिखते हैं, "झूठ बात के आग्रह को और उससे होने वाली बुराइयों को किसी ने उससे बढ़ कर सहायता नहीं दी है, जितनी कि भले लोगों की सत्य को स्वीकार कर लेने की अनिच्छा ने जब कि वह सत्य उनके सुखद विश्वास को परेशान करने वाला हो।" यह नहीं कि इन भले लोगों के दिमाग़ सन्देह से मुक्त हैं। लेकिन वे उन सन्देहों का सामना करने की और उन्हें 'बड़ी-बड़ी बातों के लिये क़दम रखने के पत्थर' बनाने की यातना से बचना पसन्द करेंगे। ठीक इसलिये कि वे अपने आप में इन सन्देहों और प्रश्नों से अभिज्ञ हैं कि वे किसी भी अन्य व्यक्ति पर जो उनके निज के गुप्त विद्रोहात्मक विचारों को स्पष्ट व्यक्त करने का साहस करता है, क्रूरता-पूर्वक टूट पड़ते हैं। रूसी आदर्श से मेरे दूर हट जाने के एक मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण का प्रयत्न करने की प्रोफेसर महोदय ने बड़ी कृपा की और इसलिये यदि मैं इस स्पष्टीकरण को खोल कर रख दूँ और सुझाऊँ कि वे भी उन समस्त उलझनों में हमारे साथ हिस्सा बँटाने को आ पहुँचते हैं जो कि, मुझे विश्वास है, उनके अन्दर भी झांक रही हैं और जिनको, उन्होंने इस पुस्तक की अपनी समालोचना लिखते समय इतने प्रभावोत्पादक ढंग से, दाब दिया है, किन्तु छिपाया नहीं, तो वे बुरा न मानेंगे। इनसे पूर्व कई अन्य व्यक्तियों ने अपने पुराने विश्वासों को तब तक छाती से चिपटाये रखा है, जब तक कि वे उन्हें अपनी भुजाओं में सख्त लाशें पा कर जग न उठे हैं। यदि वे कोई योग देंगे और ऐसा करने के लिये वे इतनी अच्छी तरह युक्त हैं, तो समय है कि वे भी उस अति विलम्बित मान्यता पर आएँ। ग़लती में कोई पाप नहीं है सिवा इसके कि जाने-अनजाने उसमें हमारा आग्रह हो।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था तब से अनेक बातें हुई हैं, जिन्होंने उन नतीजों को जिन पर यह पहुँची थी, पुनर्बल दिया है और उनमें से कुछ के प्रसंग इस संस्करण के मूलपाठ में सम्मिलित कर दिये गये हैं। एबीसीनिया के क़ातिल बोडोग्लियो की रूस द्वारा स्वीकृति जब कि इंग्लैण्ड और अमेरिका भी ऐसा क़दम उठाने से हिचक रहे थे; फिनलैण्ड और रूमानिया से बलात् हर्जाने वसूल करना, जो कि लेनिन द्वारा साम्राज्यवादी कहे जा कर लांछित किये गये थे; पोलेण्ड की अखंडता और स्वाधीनता के अभी-अभी १९४१ में दिये वचनों का भंग और स्वशासित (?) यूक्रेनियन प्रजातंत्र के कमिशार एवं सोवियत् विदेशी दफ़्तर के कोर्नीत्चुक की पत्नी वान्दा वाज़िलेव्स्का के नेतृत्व में पोलिश 'देशभक्तों' का कुटिल मज़ाक़; रूसी अधिकारियों द्वारा संचालित जर्मन पक्ष पर लड़ती हुई एक पूरी रूसी पल्टन की नार्मण्डी में आँग्ल-अमेरिकन सेनाओं द्वारा कथित धर-पकड़; ब्रिटिश साम्राज्य का "सिर्फ़ उसके सदस्यों के लिये ही नहीं बल्कि अन्य संयुक्त राष्ट्रों के लिये भी एक बहुत ही उपयोगी संगठन" की तरह मास्को का उग्र समर्थन; बड़े और छोटे राष्ट्रों की समानता की अस्वीकृति और विश्व पर प्रभुत्व करने के 'तीन बड़ों' के अधिकार का स्वीकरण; मातृत्व को राष्ट्रीय जीवन के अग्रभाग में रखने के लिये १४ जुलाई, १९४४ की राजाज्ञा और कर एवं पारितोषिक (Premium) की क्रमिक पद्धति द्वारा अधिक बड़े परिवारों को प्रोत्साहन देना; अमेरिकन साम्यवादी मुख-पत्र डेली वर्कर द्वारा जून १९४४ में-'वाल स्ट्रीट' की आलोचना करने का साहस करने के लिये उपाध्यक्ष वेलेस पर इस बुनियाद पर आक्षेप कि, " दुर्भाग्य से उपाध्यक्ष वेलेस 'वाल स्ट्रीट' पर अपने सर्व-सामान्य आक्षेप द्वारा तेहरान-विरुद्ध तत्वों के ख़िलाफ़ विग्रह को सहायता नहीं देते। इन्हें हराने के

लिये 'वाल स्ट्रीट' से होने वाली समझदार चेष्टा के साथ-साथ, व्यापकतम् प्रकार की राष्ट्रीय एकता ज़रूरी है"; —इन सब और कई अन्य महत्वपूर्ण संकेतों ने उस पीड़ाजनक पाठ को रेखांकित तथा और अधिक प्रसारित कर दिया है जिसे सीखना हमारी पीढ़ी के समाजवादियों के भाग्य में बदा है। यदि समाजवादी आदर्श को, मनुष्यों के कार्यों को अनुप्राणित करना एवं दिमाग़ों को गति देते रहना है तो यह अत्यंत महत्व की बात है कि उस आदर्श और उस राज्य के बीच स्पष्ट पृथक्करण हो जाना चाहिये, जो कि फ़िनलैण्ड के विरुद्ध अकारण आक्रमण करने के लिये १९३९ में राष्ट्र-संघ की सभा के सर्व-सम्मत मत द्वारा बाहर निकाल दिया गया था: वह राज्य जिसने कि १९४१ में, दुनिया के राष्ट्रों में अकेले ही, युद्ध-बन्दियों के साथ दयापूर्ण बर्त्ताव करने के लिये, अन्तर्राष्ट्रीय रेड-क्रास-संघों के साथ बाह्य रूप में भी सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया।

अप्रैल १९४४ के त्रैमासिक सोशल सर्विस में इस पुस्तक की एक विचार-पूर्ण और रचनात्मक समालोचना में यह इंगित किया गया था कि यह पुस्तक वास्तव में न तो समाजवाद की, न मार्क्सवाद की ही पुनर्विचारणा है, बल्कि सिर्फ़ स्तालिनवाद की। इस अर्थ में कि यह स्तालिनवाद है जो क़तई नामंजूर किया गया है—कथन में कुछ तात्पर्य है। किन्तु पुनर्विचारणा का ज़रूरी तौर पर नामंजूरी मतलब नहीं होता। स्तालिनवाद का विकास अपनी जड़ें लेनिनवाद में होने का दावा करता है और उसके ज़रिये स्वयं मार्क्सवाद में। बिना पूरे वृत्त की—और भूमि तक की—परीक्षा किये कोई व्यक्ति फल का विचार नहीं कर सकता। अतएव जो ज़रूरी है वह समाजवाद की पुनर्विचारणा है। समाजवादियों द्वारा ऐसी पुनर्विचारणा, प्रत्येक को अपनी निज की

दृष्टि के अनुसार, उस सिद्धांत और उसके व्यक्तिकरण के कुछ भागों की अस्वीकृति की ओर, कुछ अन्य व्यक्तियों की शंकाओं की ओर और जो शेष रहे उसमें और भी दृढ़ विश्वास और पुनर्पुष्टि की ओर ले जायगी।

एम्० आर० मसानी

प्रथम संस्करण की भूमिका

इस निबन्ध का प्रयोजन मूलतः हिन्दुस्तान में समाजवादियों के दरमियान कार्य-पद्धतियों की पुनर्परीक्षा और उद्देश्यों की पुनर्परिभाषा को प्रोत्साहन देना है। इसीलिये यह जितना उत्तर देने का प्रयत्न करता है, उससे अपेक्षाकृत अधिक प्रश्न उपस्थित करता है और प्रत्येक पाठक अथवा पाठिका को उन तथ्यों के प्रकाश में, जिनका कि सामना करना ही होगा, अपने निज के निष्कर्षों पर आने के लिये छोड़ देता है। यह सम्भव है कि वे शंकाएँ जो मैंने उठाई हैं, मेरे कुछ मित्रों को जिन्हें यह लगेगा कि मैं मत-द्रोह का अपराधी हूं, परेशान और उत्तेजित करेंगी। उनके लिये मेरी दलील है कि ये ठोस सत्य हैं जो परेशान करने वाले हैं और यह कि वे लोग अपनी आंखें मूँद लेने और मुंह बन्द कर लेने का आनन्द उपभोग नहीं कर सकते जो देखना चाहते हैं कि सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में न्याय किया जाय।

बीसवीं शताब्दि समाजवादी विचार धारा के सम्मुख जो नवीन समस्याएँ उपस्थित करती है, उनके प्रति यह एक व्यक्तिगत पहुँच है और किसी संघ या दल के विचारों का प्रतिनिधित्व करने के लिये यह नहीं है। उन दो बात-चीतों ने, जिन पर कि यह पुस्तिका अवलम्बित है, मैंने उम्मीद की थी कि उससे अधिक रुचि उत्पन्न की एवं विचार-विनिमय को उत्तेजित किया और इसीलिये मैं इन विचारणाओं को अधिक व्यापक पाठक-मण्डल के सामने रखने को प्रोत्साहित हुआ हूँ।

एम्० आर० मसानी

१

भ्रामक प्रभात

प्रतिदिन रूसी सैनिक-प्रगति की खबरें आती हैं। इस बात की प्रत्येक सम्भावना है कि युद्ध के पश्चात् जहां तक यूरोप का सम्बन्ध है, रूस प्रबल शक्तियों में एक हो सकता है। अतएव किसी भी समय की अपेक्षा आज यह अधिक आवश्यक है कि रूसी शासन के खरे वस्तु-स्वभाव को ठीक-ठीक समझा जाय। दुर्भाग्य से, ऐसी समझ-बुद्धि अधिकतर नहीं पाई जाती, विशेषतः हिन्दुस्तान में। अनेक और-और बातों में सुविज्ञ जन, रूस के सम्बन्ध में कोई दस साल पिछड़े हुए हैं। पिछले वर्षों में दूरस्पर्शी परिवर्त्तन—राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक—घटित हुए हैं जिनसे वे अनभिज्ञ हैं।

फिर भी, सोवियत् रूस के भीतर महान परिवर्त्तन हुए ही होंगे, यह रूस के प्रति उन लोगों के भाव-परिवर्त्तन से स्पष्ट है जो १९१७ की बोल्शेविक क्रांति की स्तुति करके अथवा निन्दा करके चले थे। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्ड के अनुदार दलों और धनिक वर्गों में बोल्शेविक लोग, अपने प्रारम्भिक वर्षों में, घोर घृणा के सहगान से आक्रान्त किये गये थे। उन पर गंदे से गंदे विशेषणों की बौछार की गई थी। लंदन का डेली मेल अपनी दाढ़ी के बाल अपने मुँह से ९० डिग्री पर उगाये हुए पापी बोल्शेविक के कार्टून लिये होता था। उन व्यक्तियों में जो सोवियत् शासन-प्रणाली को घृणा करते थे, श्री विन्स्टन चर्चिल थे, जिन्होंने रूस में सैनिक हस्तक्षेप की योजना तक बना डाली। यह क़दम, 'रूस से हाथ दूर रक्खो' आन्दोलन के कारण, जिससे कि उस योजना का सामना ब्रिटिश ट्रेड यूनियन-वादियों द्वारा किया गया था, छोड़ देना पड़ा। आज श्री चर्चिल,

स्तालिन् तथा उनकी सरकार के ऐसे प्रशंसक हैं कि, इस वर्ष के प्रारम्भ में पार्लियामेण्ट के एक समाजवादी सदस्य ने प्रजा-सभा (House of Commons) में चर्चिल का ज़िक्र "स्तालिन के चार्ली मेकार्थी" के रूप में किया। दूसरी बाजू, मेरे जैसे लोग हैं—समाजवादी—जो रूसी क्रान्ति का, मानवोद्धार के एक महान कार्य के रूप में तथा सोवियत् संघ का, संसार के श्रमिकों के लिये प्रकाश-स्तम्भ के रूप में स्वागत कर के चले थे। हम उसके लिये ठीक वैसे ही गा सकते थे जैसे कि वर्ड्स्वर्थ ने फ्रान्सीसी क्रान्ति के सम्बन्ध में गाया था :

"स्वर्गीय आनन्द था उस उषा में जीते रहना भी,
किन्तु उस मधु बेला में था यौवन साक्षात स्वर्ग ही !" ×

आज हम में से कुछ अपने स्वतः से, अब अधिक समय तक उस क्रान्ति के परिणामों से अपनी निराशा को छिपा नहीं सकते। जिन्होंने सार्वजनिक रूप से ऐसी भावनाएँ व्यक्त की हैं, उनमें लुई फिशर (*Men and Politics*), मेक्स ईस्टमेन (*Stalin's Russia and the Crisis in Socialism*), यूजेन लायन्स (*Assignment in Utopia*), फ्रेदा उत्ले (*The Dream We Lost*), एन्ड्रे गाइड (*Return from the U. S. S. R. and After thoughts on the U. S. S. R.*) सरीखे स्त्री और पुरुष हैं, जिन्होंने रूसी क्रान्ति का समर्थन किया है और जिनमें से कुछ वर्षों तक सोवियत् संघ में रहे हैं। ये अनेकों में से कुछ ही हैं। इस बात में कैसी विडम्बना है कि हाल ही में, लेनिन और त्रातस्की के एक मित्र

× मूल अंग्रेज़ी पद्य इस प्रकार है:—

"Bliss was it in that down to bé alive,
But to be young was very heaven !"

और क्रान्ति के एक प्रबल पक्ष-समर्थक, मेक्स ईस्टमेन, की आलोचनाओं के विरोध में, हेरोल्ड निकोल्सन—एक अनुदार दली—को रूसी सरकार का पक्ष प्रतिपादन करना पड़ा था !

कौन बदला है ?

इस सम्पूर्ण उलट-फेर हो जाने में बात क्या हुई है ? क्या श्री चर्चिल और ये समाजवादी दोनों ही हैं जो बदल गये हैं—अथवा यह रूस है जो पिछली दो दशाब्दियों में बदल गया है ?

हमें पुनः १९१७ पर जाना चाहिए। वह क्रान्ति किस लिए थी ? उसका उद्देश्य क्या था ? रूस उस समय एक निरंकुश शासक—ज़ार-द्वारा शासित था। कृषक और श्रमिक गण बुरी दशा में थे, युद्ध मोर्चे पर सैनिक और भी बुरी दशा में। लेनिन और त्रातस्की ने अक्टूबर १९१७ की क्रान्ति "शांति, भूमि और रोटी" के नारों के नीचे की। सैनिकों के लिये शांति, किसानों के लिये भूमि, मज़दूरों के लिए रोटी। फ्रांसीसी क्रांति की भांति यह केवल एक राजनैतिक क्रांति नहीं थी, बल्कि एक सामाजिक क्रांति भी, जो विश्व-क्रांति की पूर्व-सूचक होने को थी। बोल्शेविक नेताओं ने घोषित किया कि वे ज़ार-शासन के साथ ही साथ पूँजीवाद का अन्त कर देंगे और समाजवादी समाज की स्थापना करेंगे, जिसका लेनिन ने "स्वतन्त्र और समान" के समाज के रूप में उल्लेख किया। दूसरे शब्दों में, जैसा कि समस्त समाजवादियों और साम्यवादियों ने उसे तब समझा, समाजवादी समाज को वर्गहीन, प्रजातंत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय होना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निजी सम्पत्ति का अन्त कर दिया गया था; कारखाने और खदानें उनके मालिकों से ले लिये गये थे और सरकारी सम्पत्ति घोषित कर दिये गये थे,

जिसमें कि संयुक्त रूप से सभी का भाग होता व सभी उसका उपभोग करते और जो श्रमिकों के नियन्त्रण में होती। स्थल तथा जल-सेना में समस्त पद-श्रेणियों को तोड़ दिया गया था। स्त्रियों का उद्धार किये जाने तथा उन्हें पुरुषों के समकक्ष बनाये जाने को था। समस्त बालक-बालिकाओं को शिक्षा की समान सुविधाएँ तथा स्कूलों में स्वशासन मिलने को था। साम्यवादी दल समस्त राजनैतिक सत्ता एकाधिकृत किये था, किन्तु यह घोषित किया गया था कि ज्योंही धनिकवर्ग अधिकारच्युत कर दिये जांय और एक वर्गहीन समाज प्राप्त हो जाय, त्योंही अधिनायकतंत्र समाप्त हो जायगा और पूर्णतम प्रजातंत्र स्थापित हो जायगा। लेनिन कहते थे कि, "हरेक रसोइये को राज्य-संचालन सीखना ही चाहिए।" वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति इतना सुखी और भ्रातृभावमय हो जाने को था कि पुलिस अथवा राज्य की कोई ज़रूरत ही न रहे। एन्जिल्स के अनुरूप ही लेनिन कहते थे कि "राज्य-सत्ता विनष्ट हो जायगी।" प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार काम लिया जाय, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक दिया जाय" यह जीवन-नियम प्रत्येक व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से स्वीकृत होगा। और बाद में वे सब, सदा सुखपूर्वक रहेंगे।

१९२७

किन्तु क्या वे रहे? मैं यह जांच करने और मालूम करने के लिये रूस गया। दो छोटी यात्राएँ कर सकने में मैं काफ़ी भाग्यशाली था—प्रथम १९२७ में और फिर १९३५ में। अपनी प्रथम यात्रा से मैं प्रफुल्लित और उत्साहित लौटा। हिन्दुस्तान अथवा इंग्लैण्ड के वातावरण से भिन्नता का कोई भ्रम नहीं था—भाई-चारे की, अंतर्राष्ट्रीय ऐक्य की और सद्भावनापूर्ण साह-

चर्य्य की मनोवृत्ति जो वहां व्यापक थी। रंगीन जातियों के लिये वहां विशेष उत्साह था। मुझे याद है, एक नीग्रो ने अपनी आँखों में आँसू भर कहा था कि यही एक ऐसा देश था कि जहाँ वह वास्तव में अपने को मनुष्य अनुभव करता था। यह सत्य है कि स्तालिन-त्रातस्की विवाद अपने पूरे ज़ोर-शोर में आ चुका था, किन्तु वह समाचार पत्रों के स्तम्भों में स्वतंत्रता-पूर्वक किया जाता था—पिछले दिनों की तरह, रूसी खुफ़िया पुलिस के जुल्म-घरों में नहीं। इस बात के बावजूद कि स्तालिन ने राज्य-तन्त्र हस्तगत कर लिया था, त्रातस्की श्रमिकों का प्यारा था और सुरक्षित रहते हुए विरोध में कार्य कर सकता था। पाश्चात्य पैमानों के लिहाज़ से बाह्य-कष्ट था, किन्तु आने वाले कल के लिये असीम आशा लिये, समाजवादी समाज निर्माण करने का महान उत्साह भी।

उन कारख़ानों में जिनका मैंने निरीक्षण किया, मुझे लगा कि श्रमिकों का नियन्त्रण एक बहुत ही ठोस चीज़ थी। दफ़्तरों में दो व्यवस्थापक बैठते थे, जो क्रमशः 'संचालक' और "लाल" संचालक ("Red" Director) कहलाते थे। पहला तन्त्र विशेषज्ञ होता था, दूसरा मज़दूरों का निर्वाचित प्रतिनिधि। "लाल" संचालक की स्वीकृति के बिना ऐसा कोई निर्णय नहीं किया जा सकता था जो श्रमिकों की मज़दूरी, घण्टे अथवा काम के ढंग को प्रभावित करता हो।

शिक्षा में भी महान उन्नति हो गई थी। परीक्षाएं उठा दी गई थीं और ऐसे ही वर्दियाँ भी—एक स्पर्धात्मक और सैनिक-वृत्ति-प्रधान समाज के चिन्ह समझ कर। स्कूल न्यायालयों द्वारा, जो कि समान रूप से शिक्षकों एवं विद्यार्थियों से बने थे, शिक्षकों का विचार हो सकता था। १९२०-३० में सोवियत्

शिक्षा को जैसा जोन डेवी ने देखा, उससे वे इतने प्रभावित हो गये थे कि उन्होंने कहाः "मेरे पास उसका वर्णन करने के लिये पर्याप्त साहित्यिक बुद्धि नहीं है।"

स्त्रियों की आज़ादी और जीवन के प्रत्येक अंग में पुरुष के साथ समकक्षता, अक्टूबर क्रान्ति के ज्वलन्त-दीपों में से एक था। मुझे कामानेव की पत्नी और त्रातस्की की भगिनी श्रीमती कामानेवा से बात-चीत करने की याद है, जिन्होंने मुझ से कहा था कि एक स्त्री-समाज की पैरोकार की हैसियत से उनके लिये क्रान्ति की महत्तम उपलब्धि स्त्रियों के दासत्व-मुक्ति में रही है; क्योंकि रूसी स्त्रियाँ बहुत कुछ भारतीय स्त्रियों के जैसी अवस्थाओं से उछल कर पाश्चात्य यूरोप के जैसी और उससे भी अधिक, आगे बढ़ गई थीं। विवाह और तलाक़ के नियम मूलतः इतने रूपान्तरित कर दिये गये थे कि एक स्त्री को अपने पति से पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक स्वाधीनता मिल सके। स्त्री के स्वास्थ्य के हित में गर्भपात क़ानूनी क़रार दे दिया गया था और संतति-नियमन सम्बन्धी जानकारी राज्य द्वारा प्रचारित की जाती थी।

कट्टरपन्थी चर्च (Orthodox Church) जो ज़ार-शासन का समर्थक रहा था, राज्य-तंत्र के साथ ही विनष्ट कर दिया गया था और धर्म, लेनिन द्वारा 'जनता का अफ़ीम' के नाम से तिरस्कृत कर दिया गया था। सोवियत् रूस १९२७ में ऐसा था।

१९३५

१९३५ में मैं रूस लौटा तब तक, वोल्गा से बहुत पानी बह चुका था। पंच-वर्षीय योजना कार्यान्वित हो गई थी। थोड़ी सी

अधिक समृद्धि दिखाई पड़ती थी। किन्तु दूसरी ओर जनतन्त्र, साम्यवादी दल के भीतर से भी, एक व्यक्ति की तानाशाही द्वारा हटा दिया गया था। सार्वजनिक स्थानों में स्तालिन् के चित्र बेचारे लेनिन के चित्रों को अँधेरे में ढकेलने की कोशिश में थे! त्रात्स्की निर्वासित कर दिया गया था—बाद में अपने पीछा करने वालों द्वारा क़त्ल किये जाने के लिये। जी० पी० यू० (खुफ़िया पुलिस-हमारी अपनी सी० आई० डी० और जर्मनी के गेस्टापो के अनुरूप, जो इसी के नमूने पर बनी थी) सर्वव्यापी थी। उसके घृणित प्रथमाक्षर बदल कर एन्० के० वी० डी० कर दिये गये थे, किन्तु उसकी मनोवृत्ति अथवा उसके तरीक़ों में बिना किसी दृश्य परिवर्त्तन के अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृभाव की मनोवृत्ति ग़ायब हो चुकी थी। नौकरशाही के अनेक प्रमाण मिलते थे जो 'आ पहुँची' थी और अपने-आप को रूस की साधारण जनता से भिन्न अनुभव करती थी। विशेषतः यह राजधानी मास्को में दृश्यमान थी। अज़रबाइज़न और आर्मीनिया सरीखे दूरस्थ प्रजातन्त्रों में क्रान्ति की पुरातन उष्णता अभी भी कुछ-कुछ मौजूद थी।

उन कारख़ानों में जिनका मैंने इस बार निरीक्षण किया, "लाल" संचालक नहीं थे। मुझ से कहा गया कि वे उठा दिये गये थे। बीच के सालों में मज़दूरों का जनतन्त्र एक इत्तफ़ाक की ही बात रह गई थी। बदले में मैंने, जो स्टेखेनॉव-पद्धति कही जाती थी, पाई, जिसे हम अपनी पूँजीवादी भाषा में फुटकर-काम कहते हैं और जिसका बाद में वेण्डेल विल्की वन वर्ल्ड में "एक शीघ्र-गति-करण प्रणाली जो कि रफ़्तार तेज़ की हुई बेड्यू प्रणाली की तरह है।.....श्रम को काम में लगाने तथा मज़दूरी चुकाने की पद्धति हमारे अत्यन्त असामा-

जिक उद्योगपतियों को भी संतुष्ट कर देगी", के रूप में उल्लेख करने को थे। यह वह प्रलोभन था जो मज़दूरों को, एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा में कठिनतर कार्य्य करने के लिये प्रेरित करने को रखा गया था। परिणाम यह हुआ कि एक अधिक कठिन काम करने वाला स्टेखेनॉवी, उसकी अपेक्षा जो अपनी शक्ति अथवा बुद्धि में कम होता, पाँच अथवा दस गुना तक भी अधिक कमा सकता।

स्कूलों में स्वशासन लुप्त हो गया था और फ़ौलादी अनुशासन समय का आदेश (Order of the day) था। वर्दियां फिर प्रचलित हो गई थीं, और ऐसे ही परीक्षाएं भी। विश्वविद्यालयों के शुल्क बढ़ा दिये गये और छात्रवृत्तियाँ घटा दी गई थीं। स्कूल तथा कॉलेज के अन्दर और बाहर दोनों जगह, विद्यार्थियों की वक्तृताओं और हलचलों पर दृष्टि रखने और अवांछनीय प्रवृत्तियों की सूचना देने के लिये 'साम्यवादी युवक-संघ (Young Communist League) को आदेश दिया गया था, बहुत कुछ उसी तरीक़े से जिससे कि जापानी लोग जिसे वे 'ख़तरनाक विचार' कहा करते थे, पीछा किया करते। वह सब जिसकी जोन डेवी ने प्रशंसा की थी, विनष्ट होचुका था।

सामाजिक क्षेत्र में, मुसोलिनी और हिटलर की एक अजीब गन्ध थी जो अपने आपको जतला रही थी। तलाक़ अधिक दुष्कर हो गया था। गर्भपात फिर से ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे दिया गया था; संतति नियमन पर कुपित-दृष्टि थी। दूसरी ओर, एक क़स्बे में ग्यारह संतान पाने वाले प्रथम परिवार को पुरस्कार देने के विज्ञापन अख़बारों में पाये जाते थे। साफ़ तौर से समाजवादी पितृभूमि को उन युद्धों के लिये जो आँचल पकड़े खड़े थे, तोपों की खूराक चाहिये थी।

हरेक निरंकुश शासन में सत्य पर सदैव ही पहला आघात होता है। समस्त विरोध के चूर हो जाने तथा त्रातस्की के निर्वासन में भेज दिये जाने पर, सोवियत् सरकार ने इतिहास को फिर से लिखना शुरू किया। उद्योगों के साथ ही साथ, स्पष्ट रूप से, विचारों का भी राष्ट्रीयकरण करना था। वेब्स के अनुसार, जर्नल फॉर मार्क्सिस्ट—लेनिनिस्ट नेशनल साइन्सेज को निम्नोक्त मत मान्य है:- "गणित-शास्त्र में हम 'दल' के हिमायती हैं, शल्य-क्रिया (Surgery) में हम मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की विशुद्धता के हिमायती हैं।

जर्मनी की तरह पुस्तकें सार्वजनिक रूप से जलाई नहीं गई थीं किन्तु पुस्तकालय "अवांछनीय" पुस्तकों की छँटनी के लिये शोधित किये गये थे और स्थानीय महत्व की बातों पर इतिहास को मिथ्या सिद्ध करते हुए नई पाठ्य-पुस्तकें लिखी गई थीं। ऐसे अनेक कोप-पत्रों में से एक जोन रीड की क्रांति-गाथा 'दस दिन जिन्होंने विश्व को हिला दिया' थी, जिसे लेनिन ने उसकी यथार्थता के लिये सराहा था। उस काव्य का अपराध यही था कि उसने लेनिन के साथ ही साथ त्रातस्की का बार-बार उल्लेख किया था, किन्तु शायद ही कभी स्तालिन् का, जिसका कि भाग क्रांति में तुलनात्मक रूप से महत्व हीन रहा था।

मैं मास्को में लाल-सेना-गृह की चित्रशाला में घूमा, जहाँ कि गृह-युद्ध की और क्रांति के बाद विदेशी हस्तक्षेप के ख़िलाफ़ युद्ध की कथा मानचित्रों, चित्रों तथा दन्तकथाओं में अंकित की गई थी। वहाँ सेनापतियों के—बड़े और छोटे सभी के—चित्र थे। वहाँ वोरोशिलॉव, बुडेन्यी और ब्लुचर थे। किन्तु सब लोगों में त्रातस्की—लाल सेना का निर्माता, इन्क़िलाबी जीतों का प्रणेता—कहाँ था? आश्चर्य की बात है, त्रातस्की ग़ायब था। मैंने एक

परिचित रूसी से इसके स्पष्टीकरण के लिये कहा। 'लेकिन यह बिल्कुल ठीक है," कॉमरेड ने निस्संकोच उत्तर दिया, 'त्रात्स्की एक प्रतिक्रांतिवादी हो गया और क्रांति के लिये किये गये अपने समस्त कार्य्य को अकृत कर दिया। अतएव व्यावहारिक रूप में कहें तो वह कभी रहा ही नहीं।"

१६२७ के उत्साह और सर-गर्मी की जगह झक्कीपन और निराशाभाव की वृत्तियां—पनप रही थीं। मास्को में एक प्रचलित व्यंगोक्ति थीः "प्राव्दा (सत्य) में कोई खबरें नहीं होतीं और इज़्वेस्टिया (खबरें) में सत्य नहीं होता।"

मैं रूस से उद्विग्न और हैरान लौटा, यद्यपि अभी बिल्कुल निराश नहीं, क्योंकि विश्वास करने और आशा करने की मेरी भावना अभी तक भी बहुत बलवती थी। प्रत्येक धार्मिक पुरुष जिसकी श्रद्धा हिल गई हो, जानता है कि वह उस श्रद्धा से और भी अधिक दृढ़ता से चिपटे रहने का कैसा प्रयत्न करता है। मैंने अपनी शंकाओं और भयों को दबाया और उन्हें अपने ही तक रक्खा, यह आशा लिये कि शीघ्र ही सब कुछ अपने-आप ठीक हो जावेगा और सार्वजनिक रूप से सोवियत्-कामयाबियों की प्रशंसा करना जारी रक्खा। मैं अब समझता हूँ कि वह ग़लत था।

मेरा ख़्याल है कि सोवियत् रूस जाने की आज्ञा पा सकने में मैं, सार्वजनिक जीवन में लगभग अन्तिम अ-साम्यवादी भारतीय था। नहीं, यह ब्रिटिश सरकार नहीं थी जो आड़े आती थी। यह सोवियत् सरकार थी जो अब नहीं चाहती थी कि विदेशी समाजवादी उनके देश को सूँघते फिरें। यह बात साधारणतः ज्ञात नहीं है कि पं० जवाहरलाल नेहरू को भी,

१९३८ में सोवियत् संघ में प्रवेश करने की आज्ञा के लिये लंदन में कुछ समय के लिये प्रतीक्षा करते हुए बिठलाए रखा गया और आखिरकार रूस की यात्रा किये बिना ही उन्हें हिन्दुस्तान लौट आना पड़ा, चूँकि अनुमति-पत्र यथा समय नहीं आया। अन्य व्यक्तियों में यूसुफ़ मेहरअली, पुरुषोत्तम त्रिकमदास और प्रोफेसर एम्० एल्० दाँतवाला थे, जिन्हें इसी प्रकार प्र श की आज्ञा नहीं दी गई थी।

१९३५ से लगातार वे अभागी प्रवृत्तियाँ जो तब भी धुँधली-धुँधली दृश्यमान थीं, विकसित हो गई हैं और रूस को समाजवाद से और भी अधिक दूर ले गई हैं। कई बातों में चक्र पूरी परिधि घूम गया है, यहाँ तक कि रूसी नीति की गन्धज़ार के दिनों की अधिकाधिक याद दिलाने वाली हो जाती है।

बढ़ती हुई असमानताएँ

सामाजिक और आर्थिक असमानताओं की वृद्धि द्वारा, साधनों का उलट-फेर हो जाना आन्तरिक रूप से लक्षित है। असमानताओं की वृद्धि पर के अनेक प्रतिबन्ध एक के बाद एक ढीले कर दिये गये हैं। उन प्रतिबन्धों में से एक 'दल का अधिकतम' (Party Maximum) था जो एक आत्म-संतोष के व्रत की भाँति यह निर्धारित करता था कि साम्यवादी दल का कोई सदस्य एक निश्चित मध्यम अंक से अधिक वेतन नहीं पा सकता। अभी हाल ही में, उस रक़म की मर्य्यादा भी, जो कि अपने बच्चों को वसीयत में दी जा सकती थी, हटा दी गई है। इससे लोगों के लिये बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों के वारिस होना सम्भव हो गया है और इस तरह पूँजीवादी समाज में

जैसा होता है, उन्हें बिना कमाई हुई आमदनी पर जीने और परान्नभोजी काहिल होने का मौक़ा मिलता है।

इस युद्ध के फूट निकलने के समय रूस में असमानताओं का विस्तार किसी भी प्रगतिशील पूँजीवादी देश—संयुक्तराज्य अमेरिका जैसे—से कम नहीं था। ५ नवेम्बर १९३५ के प्राव्दा में बताया गया था कि सोवियत् खदानों में एक अस्टेखेनोवी मज़दूर को ४०० से ५०० रूबल मिलता था—एक स्टेखेनोवी को १६०० रूबल से अधिक। खदानों के अन्दर एक दल का संचालन करने वाले सहकारी मज़दूर को सिर्फ़ १७० रूबल मिलते यदि वह स्टेखेनोवी न होता और ४०० मिलते, यदि वह स्टेखेनोवी होता। अर्थात् एक खदान-मज़दूर को दूसरे से दस गुना तक भी अधिक मिलता। इंजीनियरों और विशेषज्ञों के वेतन, अदक्ष श्रमिकों से बहुधा अस्सी गुना तक भी ऊँचे रहते थे, जब कि पिल्न्याक—एक लोकप्रिय लेखक,— को प्रतिमास लगभग ३०,००० रूबल रायल्टियों में मिलते थे। जब कि एक कारखाने या खदान या रेल का स्वामित्व जायज़ नहीं है; रूसी नागरिकों के लिये अमर्य्यादित रूप से सरकारी ऋण-पत्रों में पूँजी लगाना अब सम्भव है। इन ऋण-पत्रोंपर ७ प्रतिशत ब्याज मिलता है। इस तरह, जो अपनी बढ़ी-बढ़ी तनख्वाहों में से बचा सकते हैं वे, पूँजीवादी समाज के ब्याजखाऊ वर्ग के अनुरूप ही, एक नया वर्ग बनाना शुरू करते हैं। चूँकि यही वे लोग हैं जो राज्य-तंत्र को भी नियंत्रित करते हैं और बड़े-बड़े औद्योगिक ट्रस्टों के व्यवस्थापक हैं, यह कहा जा सकता है कि रूस में एक नया शासक-वर्ग इन दिनों बनता जा रहा है। इस वर्ग के सदस्य, पूँजीवादियों की तरह, किसी विशेष कारखाने या उद्योग का स्वामित्व नहीं करते, लेकिन वे

देश की पूरी राष्ट्रीयकृत अर्थ-व्यवस्था में एक भाग के स्वामी होते हैं।

जब कि निस्संदेह यह एक दिलचस्प अन्तर है, इन असमानताओं के परिणाम पूँजीवादी समाज के परिणामों से भिन्न नहीं हैं। ठीक-ठीक कहें तो यह पूँजीवादी शोषण नहीं है, किन्तु यह शोषण ही है और ठीक वैसा ही। पुरोहित-तंत्रीय समाज के पुराने दिनों में, पुरोहित-गण राज्य के द्वारा जनता का शोषण करते थे। वे पूँजीवादी समाज नहीं थे, किन्तु हम ऐसे राज्यों को समाजवादी भी तो नहीं कह सकते!

टाइम द्वारा मोलोतॉव का हाल ही में 'स्तालिन् के अनुचर (Man Friday)' के रूप में उल्लेख हुआ था, जो कि उतना ही उच्च पद है जितना कि रूस में एक आदमी पा सकता है। उनका लेनिन द्वारा "रूस के सर्व-श्रेष्ठ नत्थीकार मुहर्रिर" की तरह तथा त्रात्स्की द्वारा "एक मिलेनसारः उच्चगामी व्यक्ति" की तरह उल्लेख किया गया था। प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखिका ईथेल मेनिन बतलाती हैं कि जब वे श्रीमती मोलोतॉव (मोलोतॉव की पत्नी) से मिलने गईं, जो कि तब सुगन्धियों के ट्रस्ट की संचालिका और रूस की धनिकतम् महिलाओं में से एक थीं, तो वे मोलोतॉव गृहस्थी में वैभव के प्रदर्शन और सुअरों के बाड़ों में, जिनमें कि मोलोतॉव परिवार के घरेलू नौकरों को जायदाद के बाहरी छोरों पर रहना पड़ता था, विरोध देख कर कैसे स्तब्ध रह गई थीं!

"रूस आज अपनी स्त्रियों से ६६ और अपने पुरुषों से ८४ घंटे प्रति सप्ताह काम लेता है। युद्ध के पूर्व वयस्क जितना काम करते थे उससे अधिक कठिन काम आज बालक करते हैं।"

(टाइम—६ सितम्बर १९४३) जब १९४४ के प्रारम्भ में श्री रेजिनाल्ड सॉरेन्सन ने प्रजा-सभा में ज़मीन के नीचे खदानों में भारतीय स्त्रियों से काम लेने का विरोध किया तो पार्लियामेन्ट के एक अनुदार दली सदस्य ने मुँहतोड़ प्रतिकार के साथ यह निर्देश किया कि समाजवादी पितृभूमि की खदानों में भी स्त्रियां आज ज़मीन के नीचे काम कर रही हैं !

सह-शिक्षा उठा दी गई

सामाजिक प्रतिक्रिया आर्थिक से समानान्तर चलती है। १९४३ के समाप्त होते-होते रूस से बाहर आने वाली अत्यधिक महत्वपूर्ण छोटी-छोटी खबरों में से एक, मुक्त किये गये प्रदेशों के स्कूलों में से सह-शिक्षा को उठा देने वाली राजाज्ञा की खबर थी। यह निश्चय १९४४ में अधिक सामान्य रूप से लागू कर दिया गया। मास्को के मुख्य माध्यमिक स्कूलों में से एक के संचालक ने स्पष्ट किया कि क्यों, "पुरुषों और स्त्रियों की एक अनिवार्य्य भिन्नता है। पुरुष को सैनिक होना ही चाहिये····· स्त्री का राज्य में एक विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण कार्य है। वह माता है।" यह साम्यवादी यंत्र-मानव शायद बखूबी यह भी चिल्ला उठे: "हिटलर को हराना ही चाहिये; हिटलर ज़िन्दाबाद!"

जन-संख्या की कृत्रिम बढ़ती अब, इटली या जर्मनी में भी न प्राप्त की गई पूर्णता को पहुँच गई है। प्रत्येक अतिरिक्त सन्तान के हेतु उसके जीवन के प्रथम पांच वर्षों के लिये उसकी माता को १९३६ में तथा १९४४ में चुकाये गये भत्ते ये हैं (जैसा कि १५ जुलाई १९४४ के लंदन इकॉनामिस्ट में निरूपित किया गया):

	१९३६	१९४४
तीसरी संतान	—	४००

चौथी संतान	...	...	—	६१००
पाँचवीं संतान	...	...	—	८६००
छठी संतान	...	...	—	१०४६०
सातवीं संतान	...	...	१०,०००	१४,५००
आठवीं संतान	...	...	१०,०००	१४,५००
नवीं संतान	...	...	१०,०००	१८,५००
दसवीं संतान	...	...	१०,०००	१८,५००
ग्यारहवीं संतान	...	...	१२,०००	२३,०००

दूसरी ओर, अविवाहितों, कुमारी कन्याओं एवं "सिर्फ़ एक या दो संतान" वाले विवाहित दम्पतियों पर एक विशेष कर लगा हुआ है।

यूरोप और सोवियत् संघ की भावी जन-संख्या (१९४४) पर, राष्ट्र-संघ के प्रकाशनानुसार, इन और अन्य-अन्य उपायों का सम्मिलित प्रभाव संभवतः हर पीढ़ी में ६० प्रतिशत से ऊपर वृद्धि होना है। इससे लिबेन्स्राम की मांग पर जाना सिर्फ़ समय ही की बात है।

महान सामाजिक महत्व का दूसरा परिवर्त्तन पूर्व-स्थापित धर्म का पुनर्स्थापन है, जिसका लेनिन ने 'जनता का अफ़ीम' नाम से वर्णन किया था। नेपोलियन ने एक बार की अपनी झक्की मनोदशा में कहाः "मैं लोगों पर बिना धर्म के कैसे शासन कर सकता हूँ?" कट्टर पंथी चर्च को मान्यता दे कर, जो कि ज़ार-शासन के साथ अपने घनिष्ट सम्पर्क के कारण, क्रांति के पश्चात् उच्छेदित कर दिया गया था, स्तालित् ने वैसी ही झक्की मनोदशा में उक्त प्रश्न का उत्तर दे दिया है।

जी० पी० यू०

हरेक क़िस्म की स्वाधीनता के पूर्ण विनाश में और लोगों के सम्पूर्ण सैनिकीकरण में 'सर्वाहारा-अधिनायक-तंत्र' की

चरमोन्नति रही है । वह तानाशाही अब साम्यवादी दल की तानाशाही भी नहीं है, बल्कि एक निष्ठुर और निर्दय खुफ़िया पुलिस जी० पी० यू० (अब एन्० के० वी० डी०), जिस पर कि हिटलर ने अपनी गेस्टापो रची है, के ज़रिये काम करने वाले एक नेता की।

अधिकांश अधिकारियों का अन्दाज़ है कि चालीस लाख और सत्तर लाख के दरमियान कुलक लोग, अर्थात् साधारणतः अच्छी हालत के किसान, जो अपने खेतों को समूहीकरण के लिये देने को तैयार नहीं थे और पचास लाख और एक करोड़ के दरमियान राजनैतिक विरोधी—स्तालिन्, केलिनिन्, मोलोतॉव, लितिनॉव और वोरोशिलॉव को छोड़ते हुए, हरेक मुख्य साम्यवादी सहित जिसने क्रान्ति में भाग लिया—जी० पी० यू० के कोप-पात्रों में रह चुके हैं।

इन लोगों का खात्मा किये जाने के पूर्व कुछ मुआमलों में 'जाँचें' की गई थीं। जहाँ तक उन 'जाँचों' का सम्बन्ध है त्रातस्की के खिलाफ़ लगाये गये आरोपों की जाँच करने को नियुक्त डेली-कमीशन निम्नोक्त निर्णयों पर पहुँचा।

"बल पूर्वक मिथ्या स्वीकारोक्तियाँ करा लेने और स्वीकार करने वालों तथा अन्य व्यक्तियों को उन स्वीकारोक्तियों के द्वारा बदनाम करने की पद्धति सोवियत् पुलिस का आज सामान्य अभ्यास है।

"कमीशन यह पाता है कि उन घोर विरुद्धताओं के विषय में—जिनका कि उसने मास्को की उन दो जांचों में अभियुक्तों की स्वीकारोक्तियों में निर्देश किया है—ली

गई यह साक्षी, उन स्वीकारोक्तियों के पाने में बलात्कार किये जाने के अनुमान को उचित ठहराती है। आरोपों के स्वरूप और उन दो जांचों में प्रमाणों के सम्बन्ध में पुनः किया गया यह अनुमान, यह मानने के लिये बाध्य करता है कि ये जांचें गढ़ंत थीं।.....

"इन सब प्रमाणों और इन निष्कर्षों के आधार पर कमीशन लियो त्रात्स्की और लियो सेदॉव को निर्दोष पाता है।"

रूसी 'शोधन-क्रियाओं' और 'जाँचों' पर, आर्थर कोइस्लर लिखित महान कला और गहरी अन्तर्दृष्टि की उस कृति डार्कनेस एट नून (मध्याह्न में अँधेरा) से बढ़ कर महत्वपूर्ण प्रकाश कोई नहीं डाला गया है। मेक्स इस्टमेन के इस कथन की सत्यता से झगड़ना कठिन है, "निर्दोष मनुष्यों के बहाये हुए रक्त को नापा जाय तो स्तालिन् द्वारा बहाया हुआ रक्त यदि एक झील के बराबर हो तो हिटलर का एक बत्तखों के गड्ढे के बराबर होगा और मुसोलिनी के रक्तपात में एक टेंक-मोटर भर कर डुबाई जा सकेगी।"

रूस में स्तालिन् का नाम 'बोझद' है जिसका अर्थ नेता होता है। रूस में संयुक्त राज्य अमेरिका के भूतपूर्व राजदूत और स्तालिन् के एक मित्र, जोसेफ ई० डेविस अपनी पुस्तक मिशन टू मास्को में लिखते हैं, "वास्तविक रूप में.....सरकार एक मनुष्य ही है—स्तालिन्, वह 'दृढ़' पुरुष जो विग्रह में उत्तर-जीवी हुआ, जिसने समस्त प्रतिस्पर्धियों से पूर्णतः छुटकारा पाया और जिसने पूरा प्रभुत्व जमा रखा है.....शासन एक अधिनायक-तंत्र है—सर्वहारा का नहीं, जैसा कि कहा जाता

है, बल्कि सर्वाहारा के ऊपर। सरकार पर पूर्णतः एक मनुष्य का प्रभुत्व है।"

जिस सीमा तक सोवियत् संघ में फ्यूहरर सिद्धान्त पहुँच चुका है वह एक कथा द्वारा स्पष्ट हो जाता है जो एण्ड्रे गाइड, सोवियत् संघ के अपने परिभ्रमण के दरमियान हुए अपने ही अनुभव के बल पर कहते हैं। एक छोटे क़स्बे में गाइड ने, जो कि राजकीय अतिथि थे, अपने, मेज़मान को एक तार भेजना चाहा। उन्होंने तार पर "मोशिये स्तालिन्" का पता किया। वह तार कभी भेजा ही नहीं गया क्योंकि पोस्ट ऑफ़िस केवल वही तार लेगा जिस पर "महान और प्रियतम् स्तालिन्" का पता किया गया हो!

लेनिन को अपने अन्तिम महीनों में जब कि वे बीमार और अशक्त थे, आने वाले खतरे का स्पष्ट रूप से आभास हो गया था। अपनी अन्तिम वसीयत में उन्होंने स्तालिन् का, "अशिष्ट, बेवफ़ा, सनकी, राष्ट्रीयात्मक और द्वेषी" के रूप में उल्लेख किया और अनुरोध किया कि वे दल के प्रधान मंत्री-पद से हटा दिये जावें। किन्तु इसमें बहुत देर हो गई थी।

किसी राज्य की विदेश-नीति उसकी आन्तरिक रचना को प्रतिबिम्बित करती है। यदि उन परिवर्तनों के, जिनमें से रूस गुज़र रहा है, निश्चयात्मक प्रमाण चाहिये तो वे पिछले वर्षों की सोवियत्-विदेश-नीति में मिलेंगे। जेनेवा स्थित राष्ट्र-संघ के "लुटेरों की टोली" के रूप में लेनिन द्वारा किये गये चरित्र-चित्रण से हट कर, सोवियत् संघ ने १९३५ के पश्चात् साम्राज्य वादी फ्रांस और ब्रिटेन के साथ में उस 'टोली' के कामों में हिस्सा लेना पसन्द किया।

१९३९ में रूस ने जर्मनी के साथ स्तालिन्-हिटलर-संधि कर डाली, हिटलर से एक मत हो कर पोलेण्ड पर आक्रमण किया और उस देश के बटवारे में सम्मिलित हुआ। स्तालिन्-हिटलर-संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद जब रूसी-प्रधान-मंत्री मोलोतॉव से पूछा गया कि फासिस्टवाद और साम्यवाद के बीच गहरा वैर होते हुए ऐसी संधि का मेल कैसे बिठाया जा सकेगा, तो उन्होंने दुर्लभ सचाई के साथ उत्तर दिया-"यह सब तो रुचि की बात है।" उधर हिटलर ने फरवरी १९४१ में एक सार्वजनिक भाषण में यह घोषणा करके प्रत्युत्तर दिया कि, "मूलतः राष्ट्रीय समाजवाद और मार्क्सवाद एक ही हैं।" (अन्तर्राष्ट्रीय मुआमलों की रायल इन्स्टीट्यूट की सरकारी रिपोर्ट, १८ वाँ भाग, सं० ५, पृ० २६९)

पुनः राष्ट्रवाद की ओर

साम्यवादी-अंतर्राष्ट्रीय-महासभा (Communist International) के तोड़ दिये जाने और १९४३ में अन्तर्राष्ट्रीय-गीत (International) को सोवियत्-राज्य-गीत के रूप में त्याग देने के साथ ही, रूस से अंतर्राष्ट्रीयता के बचे-खुचे अवशेष भी उठ गये हैं। उस समय तक रूसी जनता इन्क़लाबी समाजवाद के गीत की ये कड़ियाँ गाने की अभ्यस्त रही थी।

"उठो ! ऐ क्षुधा-मरण के बन्दी जन,
पृथ्वी के दीन-हीन तुम उठो ! उठो !!
गरज रहा न्याय आज दण्डाज्ञाओं पर,
हो रहा श्रेष्ठतर सृष्टि का नव निर्माण !
अब नहीं सकेंगी हमें रूढ़ियों की शृंखलाएँ बाँध,

तुम गुलाम, नहीं हो नगण्य आज, उठो ! उठो !!
नई बुनियादों पर होगी सृष्टि खड़ी,
रहे हम न कुछ, पर होंगे अब सब कुछ !
तो बंधु आओ, एक तल, एक थल,
अन्तिम युद्ध, कर सामना अविचल,
मानव समग्र हों अन्तर्राष्ट्रीय ! "

इसकी जगह स्तालिन् ने लाक्षणिक ढंग से इस आत्म-प्रशंसात्मक, युद्ध-प्रवृत्त-देशभक्ति से भरे युद्ध-गीत को प्रचलित किया है:

"जनता के प्रति विश्वासी होना
सिखाया है स्तालिन् ने हमें,
और किया है प्रोत्साहित हमें
काम करने को, महान बनने को।
बहा देंगे हम अपने मार्ग से,
उन आक्रमणकारियों को, अपराधियों को।
पीढ़ियों का भाग्य निर्णय
करते हम युद्धों में,
ले चलेंगे कीर्ति शिखर पर
अपने देश को !"

ये कार्य "राष्ट्रवाद की ओर लौटने" की क्रिया, जो कि अब कुछ वर्षों से चल रही है, चरम-सीमा भर हैं। हवा का रुख बतलाने वाले उन कई तिनकों में से एक, वह राजाज्ञा है, जो युद्ध

फूट निकलने के पूर्व जारी की गई थी, कि यूक्रेन, जार्जिया, तुर्क, तारतार और साइबेरिया सरीखे 'स्वशासित प्रजातंत्रों' के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अब से उन लोगों की मातृ-भाषा नहीं होगी बल्कि रूसी भाषा होगी, जो कि उस महान् रूसी जनता की भाषा है, जो ज़ार के मातहत शासन करने वाली जाति थी।

मास्को में अब अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादियों के जमघटों की जगह अखिल स्लाव परिषदें होती हैं। स्लाव-सैनिकवाद के वीरों का डंका फिर से पीटा जाने लगा है। उनमें ज़ार के सेनापति सुवारोव और कुतुझॉव हैं, जिन्होंने नेपोलियन के आक्रमण का सामना किया था। इस परिवर्त्तित दृष्टिकोण का एक मनोरंजक दृष्टांत ज़ार पीटर महान् के वृत्तांत द्वारा मिलता है। क्रांति के पश्चात् के कुछ प्रारंभिक वर्षों तक पीटर को एक अत्याचारी और दुष्ट के रूप में दर्शाया गया था जिसने कि अपने पद-दलित प्रजाजनों की घृणा ठीक ही उपार्जन की थी। १९३०–४० के दरमियान, किसी तरह, एक परिवर्त्तन दिखाई देने लगा। पीटर ने अपने दुर्गुणों को त्यागना और नये गुणों को ग्रहण करना आरंभ किया, यहाँ तक कि आज वह मास्को के रंग-मंचों पर प्रधान नायक के रूप में आता है। विदेशी समाचार पत्रों के बेमुरव्वत संवाद-दाताओं को यह लक्ष्य करते देर न लगी कि पीटर की आकृतियाँ अधिकाधिक स्तालिन् के जैसी दिखाई देने लगी हैं! युद्ध फूट निकलने के समय से यह सैनिकवाद प्रमत्त हो उठा है—संरक्षकगण (Guards) पुनः स्थापित कर दिये गये हैं, वर्दियों के श्रेणी-प्रदर्शक स्कंध-चिन्ह (Epaulettes) फिर से चला दिये गये हैं, विशुद्ध रूप से अधिकारियों की ही संस्थाएँ और क्लबें बनाई गई हैं और रेल्वे कर्मचारियों तक को मेजर, कर्नल एवं जनरल के पद दिये गये हैं। ११ सितम्बर १९४४ को एक

भारतीय दैनिक-पत्र में प्रकाशित एक तार-संदेश के दरमियान, जब स्तालिन्-पुरस्कार प्राप्त उपन्यासकार इल्या इह्रेनबर्ग ने कहा, "हमारे सिपाहियों की संगीनों पर का रक्त सुख का मंगल प्रभात है, यह मनुष्य जाति की मुक्ति है", तब तो युद्ध का यह यशो-गान अपने भयावह शिखर पर ही पहुँच गया।

जब एक महान शक्ति राष्ट्रवादी और सैनिक-विचारात्मक हो जाती है तो यह असम्भव ही है कि वह साम्राज्यवादी भी न हो जाय। इसकी सत्यता के सम्बन्ध में हमें आने वाले सप्ताहों और महीनों में ढेर के ढेर प्रमाण मिलेंगे। रूस और पास-पड़ौस के देशों के आपसी सम्बन्धों पर चिन्ता व्यक्त करते हुए वेण्डेल विल्की के एक वक्तव्य के उत्तर में, इस वर्ष के प्रारम्भ में, प्राव्दा विल्की पर चिढ़ उठा, "ये हमारे आन्तरिक मामलात हैं।" स्तालिन् द्वारा विल्की को दी गई इस "हाथ दूर रक्खो" चेता-वनी में और चर्चिल द्वारा उन्हें दी गई वैसी ही एक चेतावनी में, जब कि उन्होंने गत वर्ष हिन्दुस्तान का परिभ्रमण करना चाहा, क्या अन्तर है? इस युद्ध का आरम्भ, १९३९ में खुले आम पोलेण्ड की स्वाधीनता की रक्षा करने के उद्देश्य से हुआ था। यह बहुत सम्भव है कि कठोर विडम्बना के साथ युद्ध का अन्त पोलेण्ड की पराधीनता में होगा। आया पोलेण्ड का पूर्वीय अर्द्ध-भाग रूसी भूमि में मिला लिया जायगा या नहीं, इस बात पर काफ़ी अटकलें लगाई जा चुकी हैं। जिस बात पर अभी तक अच्छी तरह ग़ौर नहीं किया गया है वह तो यह है कि पोलेण्ड के पश्चिमी अर्द्ध-भाग की और साथ ही साथ मध्य एवं पूर्वीय यूरोप की स्वाधीनता भी ख़तरे में है।

मास्को अब लन्दन-स्थित पोलिश सरकार पर 'फासिस्ट' होने का कलंक लगाने में व्यस्त है। पश्चिमी पोलेण्ड में भी

एक कठपुतली सरकार क़ायम करने का यह श्रीगणेश है। पोलिश सरकार को फासिस्ट कहने में कितना औचित्य है यह वर्त्तमान पोलिश मंत्रिमण्डल की रूप-रेखा निरीक्षण करने से ज्ञात हो सकता है। प्रधान-मंत्री कृषक-दल का प्रतिनिधित्व करते हैं। पोलिश समाजवादी-दल का प्रतिनिधित्व तीन समाजवादी मंत्री-गण करते हैं। यह पोलिश समाजवादी-दल 'श्रमिकों एवं समाजवादियों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन' से सम्बन्धित है जिससे कि ब्रिटिश मज़दूर-दल भी सम्बन्ध रखता है। इन तीन मंत्रियों में से एक उप प्रधान-मंत्री हैं। दो अन्य मंत्री-गण क्रिश्चियन मज़दूर दल का प्रतिनिधित्व करते हैं और दो राष्ट्रीय-प्रजातंत्रवादी (अनुदार दली) हैं शेष तीन किसी दल विशेष से सम्बन्ध नहीं रखते। इससे मालूम हो जायगा कि ऐसे मंत्रि-मण्डल को 'फासिस्ट' कहना, उस फिनलैण्ड को 'फासिस्ट' की छाप लगाने की कोशिश करने के ही बराबर है जो कि अत्यधिक प्रगतिशील सामाजिक-प्रजातंत्रीय देशों में से एक है।

वस्तुतः ऐसे आक्षेप हड़पने की चालों के लिये द्वेषपूर्ण कूटनीतिक तैयारी मात्र होते हैं जो कि पोलेण्ड के मामले में तो लगभग निश्चित रूप से या तो पोलिश सरकार के शरणागत हो जाने और एक कठपुतली सरकार में परिणत हो जाने अथवा उसके द्वारा हटा दिये जाने तक पहुँच जायेंगे।

२० फरवरी १९४४ को आब्ज़र्वर (लन्दन) द्वारा प्रकाशित मास्को से आये हुए एक संदेश के अनुसार, रूसी विस्तार के प्रति की गई शंकाओं का मज़ाक उड़ाने के पश्चात् स्तालिन् ने वास्तव में स्वयं ही यहां तक स्वीकार कर लिया, जब वे उसी श्वास में यह समझाने चले कि उनकी नीति, "रूस की युद्ध-कौशल सम्बन्धी ज़रूरतों द्वारा निर्धारित की गई थी, जिनके लिये पूर्वीय यूरोप में भौमिक और राजनैतिक हेर-फेर आवश्यक हैं।"

झुँझलाहट के एक क्षण में हेरी पोलिट एक बार गरज पड़े, "ब्रिटेन के वे लोग जो यह सुझाने में संलग्न हैं कि रूस और पोलेण्ड को सन्निकट लाने के लिये अब ब्रिटिश और अमेरिकन राजनीतिज्ञों की हितकर सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है, ज़रा यह सोचने के लिये रुक जाँय कि यदि कोई रूसी यह सुझाए कि चर्चिल और गांधी को सन्निकट लाने के लिये स्तालिन् अपनी हितकर सेवाओं का उपयोग करे तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी।" किन्तु पोलिट यह समझाने को नहीं रुके कि रूस ने क्यों हस्तक्षेप नहीं किया था। यह उन्हें सूझा तक नहीं कि यदि रूस एक समाजवादी अथवा एक साम्राज्य-वाद-विरोधी राज्य भी होता तो वह हस्तक्षेप जरूर करता। पोलिट ने जो किया वह तो यह बतलाना था कि उनके दिमाग़ में हिन्दुस्तान-ब्रिटेन का घरेलू मामला था और इसी तरह पोलैंड-रूस का होना चाहिये।

दूसरा 'जन-पद'

सोवियत् विधान में एक परिवर्त्तन की सूचना देते हुए, मास्को से प्राप्त हाल ही के एक संदेश ने घोषित किया कि सोवियत्-संघ के ही भाग गिने जाने वाले गणतन्त्रों को राज-नैतिक आज़ादी मिलने की संभावना है। मज़ेदार बात तो यह है कि हमेशा से यह माना जाता था कि वे स्वशासित हैं और उन्हें अलग हो जाने का अधिकार है। 'डेवीज़' ने लिखा है, "ये समाजवादी गणतन्त्र, 'संघ' से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने के लिये सैद्धान्तिक रूप से स्वतन्त्र हैं। किन्तु दरअसल ऐसी आज़ादी शाब्दिक ही है। यह स्पष्ट है कि संघ-सरकार और ख़ास कर क्रेमलिन (स्तालिन्) सम्बन्ध-विच्छेद को सहन नहीं करेंगे।" जो यह जानते हैं कि जी० पी० यू० की भयंकर शक्ति

की तुलना में इन वैधानिक बारीकियों में कितनी-सी यथार्थता है, वे भली-भांति समझते हैं कि यह स्वशासन मुख्यतः एक बाह्य आवरण है जिसके पीछे पास-पड़ौस के देशों को आसानी से हड़प लिया जा सकेगा। अन्यथा यह हड़पना इन देशों की जनता को देश-रक्षात्मक प्रतिरोध के लिये ही उत्तेजित नहीं करेगा बल्कि शायद इंग्लैण्ड और अमेरिका को भी वर्तमान मैत्री त्याग देने को प्रेरित करे। अब रूसी सरकार का भी अपना एक 'जन-पद' होगा और वह विरोध करने वाले चर्चिल से कह सकेगी, "यदि सर रामास्वामी मुदालियर अथवा सर मोहम्मद उस्मान शांति-परिषद में हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं तो क्यों न वाज़िलेव्स्का पोलैण्ड का प्रतिनिधित्व करे अथवा टिटो युगोस्लाविया के लिये हस्ताक्षर करे ?"

५ फरवरी १९४४ के इकानामिस्ट (लंदन) में एक आलोचना प्रकाशित हुई थी, जिसमें एक मित्र के साथ व्यवहार करने में जितनी चाहिये उतनी सतर्कता के साथ कहा गया था:

> "मार्शल स्तालिन् और मोशिये मोलोतॉव की दृष्टि यथार्थताओं पर है। उनके सोलह गणतंत्र, साम्यवादी दल और पुलिस की रचना के कारण, जो कि एक विधान सम्बन्धी क़ानूनदाँ की दृष्टि से परे हैं, आपस में जुड़े रहेंगे। .....दूसरा प्रयोजन संभवतः, १९३८ में जो भूमि-विस्तार सोवियत्-संघ में नहीं थे, उन्हें 'संघ' में मिला लेने के लिये, बाह्य दुनिया की स्वीकृति पाने की ग़रज़ से मार्ग साफ़ करना है।
>
> "१९३८ के विधान के अन्तर्गत, प्रत्येक गणतंत्र को पृथक हो जाने का अधिकार प्राप्त है ही, जिस पर फिर से

ज़ोर दिया गया है, किन्तु जब तक पृथक्करण के लिये आन्दोलन करना निषिद्ध है और यह एक राजद्रोह का कार्य गिना जाता है, यह अधिकार और कुछ नहीं तो पिकविकी* ही है। १९३०-३५ के दरमियान यूक्रेन और बाइलोरशिया दोनों ही में तथा काकेशश में भी, समस्त आन्दोलन जो पृथक्करण के लिये नहीं था, बल्कि अधिक परिमाण में स्वशासन दिये जाने भर के लिये था, दाब दिया गया। १९३५-४० के दरमियान, एशिया के गणतंत्रों में की गई ऐसी ही चेष्टाओं के साथ भी यही किया गया। कोई बात यह नहीं बतलाती कि स्थिति में मौलिक रूप से परिवर्त्तन किया गया है।"

कुछ दिनों पूर्व ४ फरवरी १९४४ के अपने संपादकीय लेख में टाइम्स ऑफ इंडिया ने अनजाने ही में व्यंग से लिखा था:

> "दर असल, ऐसा मालूम होता है कि रूसी, बहुत कुछ 'ब्रिटिश-राष्ट्र-जनपद' के तरीक़ों पर ही सोवियत् गणतंत्रों का एक 'जनपद' स्थापित करना चाहते हैं। ब्रिटेनवासी, जिन्होंने इस 'जन-पद' कल्पना को जन्म दिया, इस रूसी प्रस्ताव को अपने प्रति आभार-प्रदर्शन के रूप में मान सकते हैं।"

कुछ पक्षों द्वारा यह ज़ोर दिया गया है कि रूस की गृह-नीति एवं विदेश-नीति के ये निस्संदेह अभागे लक्षण, ऐसे समय जब कि रूस को नाज़ी आक्रमण के खिलाफ़ अपनी रक्षा करने के लिये तैयार होना था, अनिवार्य्य थे और यह कि युद्ध के पश्चात् रूस फिर से समाजवादी समाज की ओर अपनी

---

* पिकविक—चार्ल्स डिकेन्स के एक नाटकीय-पात्र मिस्टर पिकविक जैसा

प्रगति आरम्भ कर देगा। वे यह चाहते हैं कि कोई इस आशावाद में साझी हो सके जो प्रमाणों पर टिका हुआ नहीं है, बल्कि ऐसी श्रद्धा पर कायम है जो अंधी भी है और बहरी भी। डेवीज लिखते हैं, "मैं देखना चाहता हूँ कि साम्यवाद के प्रति भक्ति व्यक्त करते रहने के साथ ही, व्यावहारिक रूप में सरकार निरन्तर सही दिशा में बढ़ती चले, ठीक जैसे कि वह पिछले आठ वर्षों से करती रही है।"

समाजवादी या पूँजीवादी ?

सिर्फ़ बहुत ही जड़ व्यक्ति आज रूस को एक समाजवादी राज्य कह सकता है। समाजवादी समाज के तीन आवश्यक लक्षणों में से एक भी उसमें नहीं है। वह न तो वर्गहीन है, न प्रजातंत्रीय और न अंतरराष्ट्रीय। कहने का यह अर्थ नहीं है कि सोवियत् शासन के जमा-पक्ष में बड़ी-बड़ी कामयाबियां नहीं हैं। उसने देश का उद्योगीकरण किया, कृषि को अधिक पक्की नींव पर खड़ा किया, भौतिक समृद्धि को बढ़ाया और ऐसी गति से साक्षरता का प्रचार किया कि दूसरे देशों को उसकी उपलब्धि अभी तक असम्भव ही प्रतीत हुई है। लेकिन इन कामयाबियों के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से समाजवादी बात कुछ नहीं है। सभी समर्थ पूँजीवादी और फ़ासिस्ट राज्यों के यही उद्देश्य हैं। दर असल, जैसा कि डेवीज़ स्वीकार करते हैं, "राज्य ने व्यावहारिक उपयोग में साम्यवाद के सिद्धान्त को त्याग दिया है। एक ही स्थायी और संस्थित मूल जो राज्य ने जाना है वह मुनाफ़ा है।" क्या रूस तब पूँजीवादी राज्य कहा जा सकता है? मेरा ख्याल है कि इसका उत्तर उतना ही नकारात्मक है। रूस और कुछ अन्य देशों की हाल ही की घटनाओं ने यह बतला

दिया है कि किसी राज्य के लिये पूँजीवादी या समाजवादी ही होना आवश्यक नहीं है। वास्तव में राज्य का एक तीसरा ही प्रकार केवल संभव ही नहीं है, बल्कि अस्तित्व में आ भी रहा है और उन देशों में से एक, जहां आप उसे देख सकते हैं, रूस है।

ऐसे राज्यों को 'फासिस्ट' कहने में हिचक होती है क्योंकि पिछले वर्षों में 'फासिस्ट' वैज्ञानिक व्याख्या की अपेक्षा एक गाली का शब्द अधिक हो गया है। कुछ हलकों में आजकल, जिससे आप सहमत न हों वह 'फासिस्ट' है। इस शब्द के प्रति इस भावनात्मक पहुँच को देखते हुए, इसे टाल देना ही सर्वश्रेष्ठ है। हम यहां रूस की स्तुति अथवा निन्दा करने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं न उस पर कोई नैतिक फ़ैसला देने का, बल्कि हमारा प्रयत्न उसे समझने और उसके अनुभव से शिक्षा लेने का है। इन दिनों रूस का वर्णन बहुधा, चलती भाषा में कहें तो, 'राजकीय पूँजीवादी' के रूप में किया जाता है। शायद रूस जैसे किसी राज्य के लिये सर्वश्रेष्ठ शब्द वह है जो अमेरिकन समाजवादी लेखक जेम्स बर्नहाम ने अपनी अत्यन्त ही उत्तेजक पुस्तक व्यवस्थापकीय-क्रान्ति × में निर्माण किया है। बर्नहाम द्वारा जैसी व्याख्या की गई है, एक व्यवस्थापकीय-राज्य न तो पूँजीवादी राज्य होता है न समाजवादी, बल्कि ऐसा राज्य, कि जिसमें उन कर्मचारियों के पास, जो शासन-प्रबन्ध का संचालन करते हैं और उन व्यवस्थापकों के पास, जो उद्योगों का संचालन करते हैं, शक्ति होती है। व्यवस्थापकीय राज्य और समाजवादी राज्य में समता यह है कि दोनों ही में उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों में व्यक्तिगत सम्पत्ति का या

× James Burnham—Managerial Revolution

तो अन्त कर दिया जाता है या वह निष्क्रिय कर दी जाती है और समस्त उद्योग-धन्धों और आर्थिक साहस-कार्यों पर या तो राज्य का स्वामित्व होता है अथवा नियन्त्रण होता है। व्यवस्थापकीय राज्य और समाजवादी राज्य में अन्तर यह है कि एक समाजवादी राज्य में राज्य स्वयं समाज का अथवा साधारण जनता का होता है, जब कि व्यवस्थापकीय राज्य में राज्य और उसकी "राष्ट्रीय कृत अर्थ-प्रणाली" जनता द्वारा नियन्त्रित नहीं किये जाते बल्कि उन कर्मचारियों या व्यवस्थापकों के एक छोटे से गुट्ट द्वारा, जिनकी कि तानाशाही रहती है। एक दूसरे लेखक कहते हैं, "सर्व-सत्तात्मवाद समाजवाद का शरीर है, बिना उसकी आत्मा के।" बर्नहाम के अनुसार यह सम्भव है कि सामाजिक संगठन की अगली अवस्था में समाजवाद नहीं होगा, बल्कि एक व्यवस्थापकीय समाज होगा। यह हो सकता है कि फ़िलहाल मनुष्य, उन औद्योगिक और राजनैतिक विशालकाय यंत्रों को जिनका उसने निर्माण किया है, नियन्त्रण करने में काफ़ी अच्छी तरह समर्थ नहीं है। जब कि पुरानी क़िस्म का पूंजीवाद, अपनी अराजकता, अपनी अयोग्यता और अपनी अव्यवस्था सहित बेकार हो चुका है, मनुष्य अभी भी समाजवादी समाज के लिये परिपक्व नहीं है।

महत्व की बात तो यह है कि, जैसा एरिक स्ट्रोस ने सोवियत रूस में लिखा है, यह बात मान ली जानी चाहिये कि, "दो दशाब्दियों से कुछ ही अधिक समय में, सोवियत् प्रणाली और साम्यवादी दल ने इतिहास के अत्यधिक त्रासजनक कालों में से एक को लगभग पूर्ण किया है।" अन्यथा समाजवाद के प्रति बड़ी जोखिम उठा कर हम उसे सोवियतों के साथ उलझाते चले जायँगे। यदि समाजवादी आदर्श को लोगों के दिमाग़ों में

विकृत होने और अधोगति पाने से बचाना है तो यह ज़रूरी है कि उसे अपने रूसी विकृत-चित्र से स्पष्ट रूप से पृथक् कर दिया जाय।

ऐसा कहा जाता है कि सृष्टि के कुछ भागों में जब कि अभी रात ही होती है, अँधेरा हलका पड़ता हुआ मालूम होता है और लोग यह सोच कर गुमराह हो जाते हैं कि यह प्रभात है। पर किसी तरह, होता यह है कि यह रहस्यमय प्रकाश पुनः लुप्त हो जाता है और रात ही चलती रहती है और कुछ घंटे व्यतीत हो जाने के बाद ही वास्तव में सूर्य्य उदय होता है। आने वाले समय में, इतिहास-वेत्ता १९१७ की रूसी क्रांति का, शायद समाजवादी-दिन के ऐसे ही भ्रामक प्रभात के रूप में उल्लेख करेंगे। हमारी स्थिति तो मेथ्यू अर्नाल्ड की इन पंक्तियों में है—

'दो सृष्टियों के मध्य, एक मृत,
दूसरी जन्म लेने ही में अशक्त!' ×

× मूल अंग्रेज़ी पद्य इस प्रकार है:—

'Between two worlds, one dead,
The other powerless to be born,'

२

नया दिन

ऑस्कर वाइल्ड ने अनुभव की परिभाषा "व्यक्ति द्वारा अपनी त्रुटियों को दिया गया नाम" की है। इसलिये, किसी समाजवादी का, यूं कहिये, पिछले पच्चीस वर्षों के अनुभव को ध्यान में रखते हुए, समाजवाद पर पुनरावलोकन करने का कोई भी प्रयत्न, किसी सीमा तक ज़रूर निज की आलोचना को ले बैठेगा।

लेकिन पच्चीस वर्ष ही क्यों? इसलिये कि पच्चीस वर्ष का समय मुझे बहुत काफ़ी मालूम होता है कि जिसको ध्यान में रखते हुए समाजवाद में अपनी पहुँच और अपने विश्वास का पुनरावलोकन किया जा सके; क्योंकि पच्चीस वर्ष ही हुए हैं जब कि गत महायुद्ध के बाद हर जगह लोगों ने "फिर कभी नहीं" की शपथें ली थीं; और पच्चीस वर्ष ही हुए हैं रूसी क्रान्ति को हुए भी!

गत दो दशाब्दियों का पुनरावलोकन करने पर, कुछ बुनियादी मान्यताएँ याद आ जाती हैं जिनको ले कर समाजवाद में दुनिया की लगभग सभी बुराइयों की रामबाण दवा होने का विश्वास टिका हुआ था। वे मान्यताएँ यह थीं कि आदमी मूलतः भला होता है लेकिन प्रणाली ख़राब होती है। पूँजीवाद—उसकी अराजकता, उसके सिद्धान्त-सूत्र "प्रत्येक अपने स्वतः के लिये हैं और बाक़ी चाहे भाड़ में जांय", मुनाफ़ाख़ोरी

का उसका आग्रह, एक ओर बड़े-बड़े रईसों और दूसरी ओर असहाय तथा निर्धन आदमियों, औरतों और बच्चों के बीच की उसकी अवाध्य प्रतियोगिता सहित—दुश्मन दिखाई दिया, —मनुष्य और सुखी दुनिया के बीच का एक मात्र रोड़ा। वह पूँजीवाद था जो श्रमिक जनता को ग़रीब बनाये हुए था, वह पूँजीवाद था जो स्त्रियों को आर्थिक पराधीनता और सामाजिक हीनता की हालत में रखे हुए था, वह पूँजीवाद था जो वेश्या-वृत्ति तथा अन्य सामाजिक दुर्गुणों के लिये ज़िम्मेदार था, वह पूँजीवाद था जिसने बच्चों को अशिक्षित और मूर्ख रक्खा था और सब से मुख्य बात तो यह कि वह पूँजीवाद था जिसकी वजह से युद्धों की पुनरुक्ति टल नहीं सकी थी। आपको सिर्फ़ पूँजीवाद को नष्ट कर, उसकी जगह समाजवाद क़ायम कर देना है और फिर मानव जाति की समस्त बुराइयां विलीन हो जायँगी।

पूँजीवादी-प्रणाली को उलट फेंकने और प्रजातन्त्र को आर्थिक क्षेत्र तक बढ़ा देने के लिये आपको जो कुछ करना था वह था, निजी सम्पत्ति को उठा देना और उत्पादन, वितरण एवं विनिमय के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर देना। वर्गहीन समाज का आधार यह नारा होगा, "प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार (काम लिया जाय); प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार (पारिश्रमिक दिया जाय)।" तब सारी जाति एक कुटुम्ब के समान हो जायगी और फिर सर्वदा सुख-पूर्वक रहेगी! लेनिन ने समाजवादी समाज का वर्णन "आज़ाद और बराबर" का समाज किया था, जहां पर मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसने की पूरी-पूरी आज़ादी होगी। मैं ज़ोर देना चाहता हूँ कि समाजवादी विचारधारा की सभी सम्प्रदायों की मान्यताएँ यही थीं। सामाजिक-प्रजातंत्रवादियों का आग्रह था कि इंग्लैण्ड और

फ्रान्स जैसे उन्नत प्रजातंत्रीय देशों में यह रूपान्तरिकरण गोलियों द्वारा नहीं बल्कि मत-पेटियों द्वारा किया जा सकता है। साम्यवादियों की दलील थी कि ऐसा परिवर्त्तन सिर्फ़ एक सशस्त्र विद्रोह द्वारा, जैसा कि रूस में हुआ, हिंसक राज्य-क्रान्ति द्वारा तथा क्रान्तिकारी-दल (याने कि उनके ही दल) द्वारा सर्वाहारा (प्रॉलितारियत) के लिये, शक्ति को हथिया लेने से ही हो सकता है। सर्वाहारा के अधिनायक तंत्र के कुछ समय पश्चात ही वर्गहीन समाज स्थापित हो जायगा, राज्य-सत्ता विनष्ट हो जायगी और आप अपने को समाजवादी समाज में पाएँगे। इस विचार-धारा की सभी सम्प्रदायों की यह सामान्य मान्यता थी कि पूँजीवाद की जगह सिर्फ़ समाजवाद ही ले सकता है। यह भी सामान्य रूप से मान्य था कि समाजवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय मत है और इसकी परिणति विश्व की एकता और विश्व-बन्धुत्व में होगी। समस्त समाजवादियों की पच्चीस वर्ष पहले की इन मान्यताओं का मैंने यहां उल्लेख किया है क्योंकि इस पृष्ठ भूमि पर ही पिछली दो दशाब्दियों के प्रगतियों का पुनरावलोकन किया जाना चाहिये।

सामाजिक प्रजातन्त्रवादी

यदि हम सामाजिक-प्रजातन्त्र और साम्यवाद के विकास पर अलग-अलग विचार करें तो बात ज्यादा अच्छी तरह समझ में आ सकेगी। इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी जैसे प्रधान-प्रधान राज्यों में तो सामाजिक-प्रजातन्त्र की कहानी अच्छी तरह विदित ही है। यह कमज़ोरी की, नेतृत्व की कमी की और खुले रूप से माने गए मत में भी विश्वास-हीनता की एक कहानी है। " क्रमिक-विकास की अनिवार्यता " के नारे की आड़ में सामाजिक-प्रजातन्त्रीय नेताओं ने समाजवाद की ओर

ज़रा भी बढ़ने से इन्कार कर दिया। जर्मनी के सामाजिक प्रजातन्त्रवादियों के निर्बल और हिचकते हाथों से शक्ति और नेतृत्व हिटलर के हाथों में खिसक गये। इंग्लैण्ड और फ्रान्स में, मेकडानल्ड और ब्लम,—दोनों के व्यक्तिगत गुणों में भारी अन्तर होते हुए भी—प्रजातन्त्रीय साधनों से सामाजिक क्रांति का प्रयास करने के लिये इन्हें बार-बार दिये गये मौकों को स्वीकार न करने के समान रूप से अपराधी थे। १९२६ की ब्रिटिश-आम-हड़ताल की सफलता से ब्रिटिश-मज़दूर-सभा (टी० यू० सी०) की सामान्य-परिषद् के सदस्यों से ज्यादा कोई भयभीत नहीं हुआ था, यह ठीक इसलिये कि उस हड़ताल से इन्क़िलाबी परिवर्तनों की सम्भावनाएँ हो गई थीं।

इन सब देशों में, इसी समय मज़दूर-संघ की नौकरशाही का उत्थान भी देखने को मिला, जिसने अपने-आपको मुख्य मज़दूर पेशा वर्ग से अपनी ज्यादा आमदनी और भिन्न कार्य्यों के कारण अलग कर लिया और जिसने अपने-आपको, शिष्ट भाषा में कहें तो, पूँजीवादी दुनिया में बहुत आराम में महसूस किया।

सामाजिक-प्रजातन्त्रीय हलचलों में दूसरा मुख्य विकास, उनका युद्ध-विरोधी एवं साम्राज्य-विरोधी स्थिति से धीरे-धीरे बदल कर युद्ध और साम्राज्य के हिमायतियों की स्थिति में आ जाना था। वह ब्रिटिश-मज़दूर-दल, जिसने गत महायुद्ध के पश्चात् रेम्जे मेकडानल्ड को उनके युद्ध-विरोधी ज्ञात-जीवन की वजह से अपने नेतृत्व के लिये चुना और युद्ध होने की हालत में जिसने वर्ष-प्रति-वर्ष आम-हड़ताल घोषित करने के प्रस्ताव पास किये, उसे चर्चिल के युद्ध-मन्त्रि मण्डल में भाग ले कर समाप्त होना था।

जब कुछ छोटे देशों में—ख़ास कर, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क और फिनलैण्ड के स्केन्डिनेवियन समूह में—समाजवादियों के इतिवृत्त को देखते हैं तो इस बहुत कुछ निराशा-जनक इतिवृत्त से स्फूर्ति-दायक विरोध मिलता है। इन देशों में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में प्रजातन्त्र का निरन्तर विस्तार होता रहा है जिसे न तो उतना लक्ष्य ही मिला है और न उतनी क़द्रदानी ही, जितने का वह अधिकारी है। यदि मुझ से पूछा जाय कि १९३९ में जब युद्ध फूट निकला तब समाजवादी समाज के रास्ते पर कौन से देश सब से आगे थे तो मैं इन्हीं की ओर निर्देश करूँगा।

परान्न-भोजन

ताज्जुब होता है कि बड़ी-बड़ी शक्तियों और छोटे-छोटे राष्ट्रों में यह विरोध किस कारण से है? मैं यह महसूस करने से अपने-आपको नहीं रोक सकता कि एक समूह में साम्राज्यवाद की उपस्थिति और दूसरे समूह में इसका अभाव ही इसका कारण है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश-मज़दूर-आंदोलन की मनोवृत्ति में अधिकांश गंदगी का मूल कारण इस सत्य में निहित है कि हिन्दुस्तान के किसानों तथा अन्य पराधीन देशों के शोषण के मुनाफे में अंग्रेजी मज़दूर-वर्ग भी हिस्सेदार है—और अयोग्य नेतृत्व में हिस्सा बँटा कर सन्तुष्ट है। इसका मतलब, निस्संदेह, यह नहीं है कि औसत अंग्रेज़ मज़दूर जानते-बूझते साम्राज्यवादी हैं ब्रिटिश-शासक-वर्ग ने इंग्लैण्ड में सामाजिक-क्रांति को ख़रीद लेने के लिये जिस क्रिया का उपयोग किया है, उसे 'परान्न-भोजन' नाम दिया गया है।

जब सर विलियम बीवरिज से पूछा गया कि बीवरिज-योजना के लिये अर्थ-व्यवस्था कैसे बैठ सकेगी तो उन्होंने

यह उत्तर दिया बतलाते हैं कि यह हो सकेगा यदि बेकारी टाली जा सके, जो युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन द्वारा अपने निर्यात के बाज़ारों को बनाये रखने एवं तरक्की देने पर निर्भर है। इसका मतलब है हम—पिछड़े हुए तथा पराधीन देशों के लोग ! हिन्दुस्तान तथा साम्राज्य के सम्बन्ध में ब्रिटिश-मज़दूर-दल का काला लेखा, मैं सोचता हूँ, उनके नेताओं द्वारा इस सचाई को बहुत कुछ समझ लेने के कारण हैं कि यदि साम्राज्य चला जायगा तो अंग्रेज़ मज़दूर को कुछ समय तक अपना पेट काटना पड़ेगा। यह क़ीमत अंग्रेज़ मज़दूर और उसके नेता स्पष्ट ही चुकाने को तैयार नहीं हैं। दूसरे शब्दों में ब्रिटिश-मज़दूर-वर्ग का तात्कालिक स्वार्थ एक बेहतर अंतर्राष्ट्रीय समाज की ओर प्रगति के मार्ग में बाधक है।

यही सर स्टेफर्ड क्रिप्स के दिमाग़ में होगा जब १९३५ में एक हिन्दुस्तानी समाजवादी पत्र के लिये लिखे गये लेख में उन्होंने कहा कि इंग्लैण्ड के लिये समाजवाद और हिन्दुस्तान के लिये आज़ादी एक दूसरे का दामन पकड़े हैं।

साम्यवादी

हम में से बहुत से अपनी ज़िन्दगी में किसी अवसर पर सामाजिक-प्रजातन्त्रवादियों के खोखले इतिवृत्त से साम्यवादियों की ओर कुछ आशा ले कर मुड़े हैं। परन्तु अपनी स्थापना के कुछ ही वर्षों के भीतर यह अधिकाधिक प्रत्यक्ष होता गया है कि साम्यवादी-अन्तर्राष्ट्रीय-महासभा (Communist International) और विविध देशों में उसकी इकाइयाँ, सोवियत् सरकार द्वारा आर्थिक सहायता-प्राप्त रूसी विदेश-दफ्तर की अधीन शाखाओं से अधिक और कुछ नहीं है। दुनिया के अधिकतर देशों में इसका इतिवृत्त अत्यन्त ही अप्रिय रहा है—

समाजवादियों तथा मज़दूर-संघ के आन्दोलनों में फूट डालने और उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने की कोशिश करने का और जर्मनी में वैमर प्रजातन्त्र की सामाजिक-प्रजातंत्रीय सरकार को उलट-फेंकने की ग़रज़ से नाज़ियों के साथ मिल जाने का ! गत वर्ष के अन्त में कॉमिन्टर्न के विसर्जन को, अपने-अपने देशों की मज़दूर हलचलों में सक्रिय भाग लेने वाले लोगों ने आराम की सांस ले कर सुना था।

हमारे अपने देश में, हिन्दुस्तान के साम्यवादी-दल का राष्ट्र-विरोधी इतिवृत्त सबके सामने खुला रक्खा है। इसने मज़दूर-संघ, किसान और विद्यार्थी आन्दोलनों को बारी-बारी से नष्ट-भ्रष्ट किया है। आज़ादी हासिल करने के लिये किया गया जनता का एक भी सामूहिक-आन्दोलन ऐसा नहीं है, जिसका इन्होंने विरोध न किया हो। १९३०-३१ में व १९३२-३३ में ऐसा ही हुआ। अगस्त १९४२ और उसके बाद में, साम्यवादी-दल द्वारा आज़ादी-संग्राम के साथ विश्वासघात किये जाने और 'लोक-युद्ध' के दिखावटी नारे की आड़ में युद्ध के समर्थन किये जाने पर तो यह इतिवृत्त शिखर पर ही पहुँच गया। आज साम्यवादी, रजवाड़ों और साम्प्रदायिक संगठनों के साथ ही साथ, हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी राज्य के एक स्तम्भ हैं। उन्होंने अपने लिये मौजूदा अधोगति व बहिष्करण बहुत ठीक ही उपार्जन किये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय होने और इसलिये कोरे-मोरे राष्ट्रीय लोगों से उच्च होने का दावा करने वाले ये भारतीय साम्यवादी, वास्तव में रूसी राष्ट्रवादियों से विशेष कुछ नहीं हैं। हाल ही में किसी ने उनका 'हिन्दुस्तानी-रूसियों' के रूप में वर्णन ग़लत नहीं किया था। उनके लिये रूसी-राज्य के स्वार्थों एवं समय-समय

पर की उसकी वैदेशिक नीति की तात्कालिक आवश्यकताओं के सामने अपने देशबन्धुओं के स्वार्थ एवं अपने वतन की आज़ादी के मसले तुच्छ हैं। जब स्तालिन् ने अगस्त १९३९ में हिटलर के साथ संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर के हिटलर को हरी रोशनी दिखला दी और विश्व-धरातल पर युद्ध को खुला छोड़ दिया तो साम्यवादी उन लोगों में थे जिन्होंने युद्ध को साम्राज्य वादी युद्ध घोषित किया था और अंग्रेजी-फ्रांसिसी-अमेरिकन साम्राज्यवाद को मानव-उन्नति का प्रमुख दुश्मन कह कर ज़ोरों से तिरस्कृत किया था।

२ फरवरी १९४० को, दल के पत्र डिएवेल्ट के एक लेख में जर्मन साम्यवादी नेता वाल्टर उल्ब्रिच ने, जो अब 'आज़ाद-जर्मन-समिति' के एक सदस्य हैं, लिखा, "यह युद्ध-नीति (अर्थात् मित्र-राष्ट्रों का समर्थन) और भी अधिक अपराधी है, क्योंकि इंग्लैण्ड विश्व में सबसे बड़ी प्रतिक्रियावादी शक्ति है।"

१ फ़रवरी १९४० को ब्रिटिश साम्यवादी पत्र दि डेली वर्कर ने लिखा, "हिटलर ने एक बार फिर अपने इस दावे को दोहराया है कि युद्ध ब्रिटेन द्वारा उस पर लादा गया था। इस ऐतिहासिक सत्य का कोई उत्तर नहीं है। ब्रिटेन ने ही जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। युद्ध रोकने के प्रयत्न किये गये थे। लेकिन सोवियत्-जर्मन शान्ति-प्रस्ताव ब्रिटेन द्वारा ठुकरा दिये गये। बराबर इन सब महिनों में, ब्रिटिश और फ्रांसीसी सरकारें युद्ध रोकने में समर्थ थीं। लेकिन उन्होंने उसे विस्तार देना ही पसन्द किया।" भारतीय साम्यवादियों ने भी इसी परिपाटी का अनुसरण किया। लेकिन जब हिटलर ने अपने साथी का सामना किया और रूस पर आक्रमण कर दिया तो साम्यवादियों ने अपना चेहरा बदल लिया और उसी साम्राज्यवादी युद्ध के कट्टर समर्थक हो गये।

हम में से बहुतों की, जो कि कॉमिन्टर्न एवं उसकी शाखाओं के बारे में किसी भ्रम में नहीं थे, फिर भी, एक समय सोवियत् रूस पर ही हमारी आंखें लगी थीं और हमारी आशाएँ अटकी थीं। हमने अनुभव किया कि वहां एक महान् प्रयोग हो रहा था। रूसी-क्रान्ति का भाग्य, हमारी पीढ़ी एवं शताब्दि के लिये 'विश्व-समाजवाद' के भाग्य का निर्णय करेगा। इस महान् प्रयोग की कहानी तथा उसके सही रास्ते से भटक जाने का हाल पहले अध्याय में बतलाये ही जा चुके हैं।

समाजवादी समाज प्राप्त करने में रूसी-क्रान्ति की असफलता ने, तथा सर्वसत्तात्मवाद जैसी नयी बुराई के उत्थान ने, उन सब के लिये, जिनके दिमाग़ नये विचारों का स्वागत करने को अब भी तैयार हैं, यह आवश्यक कर दिया है कि वे उन मान्यताओं की, जिन पर उनका समाजवाद अभी तक अवलम्बित रहा था, फिर से जांच करें और यह निश्चय करने का प्रयत्न करें कि पहले मानी गई किन-किन बातों ने उन्हें ग़लत निष्कर्षों पर पहुँचाया है।

उन डरपोक दिमाग़ों को, जो ऐसे मतान्तर से भयभीत हैं, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने अपने नाटक 'मेजर बारबरा' में स्वयं अपने ही को सम्बोधित करके कहा है, "हम उस समय क्या करते हैं जब कि एक नई तोप या एक नभचर-युद्धपोत पर वर्षों की मिहनत और विचार और हज़ारों पाउण्ड नक़द रक़म ख़र्च करते हैं और इस सब के बाद भी वह एक ज़रा बाल बराबर ही ग़लत निकल जाती है ?—नष्ट कर देते हैं ! उस पर एक भी घंटा या पाउन्ड और ख़र्च न करते हुए नष्ट कर देते हैं !! आप ने स्वयं ही 'कुछ' निर्माण किया है, जिसे आप नैतिकता या धर्म या न जाने क्या-क्या कहते हैं। किन्तु इसका वास्तविकताओं

से मेल नहीं बैठता। अरे, इसे नष्ट कर दो! इसे नष्ट कर दो और जो उपयुक्त हो उसे प्राप्त करो!! दुनिया की आज यही तो गलती है। वह अपने बेकार भाप के इंजिनों और डायनमों को तो नष्ट कर देती है, लेकिन वह अपनी पुरानी दुर्भावनाओं, अपनी पुरानी नैतिकताओं, अपने पुराने धर्मों और अपने पुराने राजनैतिक विधानों को नष्ट नहीं करेगी।"

हमारे देश के बुद्धिजीवियों में अब भी बहुत मात्रा में 'गुलाम मनोवृत्ति' मौजूद है, जो विशेष रूप से पश्चिम के बुद्धिजीवी नेताओं के, चाहे वे इंग्लैण्ड, अमेरिका या रूस कहीं के हों, अतिशय सम्मान के रूप में प्रकट होती है। पश्चिम का इतिवृत्त तथा खास कर उसके प्रगतिशील आन्दोलनों का दिवालियापन, 'चेले' का 'गुरु' से शिक्षा लेने के इस रुख को शायद ही उचित ठहराता है। अब तो समय यह है कि इस देश में जो भी अपने-आपको प्रगतिशील या मौलिक-विचारवादी समझते हों वे अपने लिये आप ही सोचें और सचमुच पश्चिम के उन विचारकों को सही-सही बातें सुझाने की अभिलाषा करें, जो कि आज जो कुछ उन पर आ पड़ा है उससे अपने-आपको इतने हैरान तथा त्रस्त महसूस करते हैं। अतएव लाभ ही होगा यदि हम उन बातों के पता लगाने का प्रयत्न करें, जिनको ले कर पश्चिम में समाजवादी विचारधारा का गत पच्चीस वर्षों की घटनाओं द्वारा गलत रास्ते पर होना सिद्ध हो गया है।

राष्ट्रीयकरण ही एक सर्वश्रेष्ठ इलाज?

मार्क्सवाद की कम से कम चार बड़ी-बड़ी मान्यताएँ हैं—और भी कुछ हो सकती हैं--जिन पर, मेरा विश्वास है, पुनर्विचार किया जाना चाहिये। इनमें पहली यह है कि व्यक्तिगत

सम्पत्ति का अन्त तथा उसका राष्ट्रीयकरण अपने-आप ही आर्थिक प्रजातंत्र एवं एक वर्गहीन समाज क़ायम कर देगा। रूस के उदाहरण से अब यह स्पष्ट हो गया है कि ऐसा होना ही ज़रूरी नहीं है। पूर्ववर्त्ती समाजवादी विचारकों ने जिस बात पर पूरी तरह से ग़ौर नहीं किया वह यह थी कि यद्यपि राष्ट्रीयकृत उद्योग राज्य के हो सकते हैं पर राज्य स्वयं जनता का नहीं भी हो सकता है; और यह कि सामूहिक अर्थ-व्यवस्था प्राप्त करने की क्रिया में, राजनैतिक प्रजातंत्र रास्ते ही में खो सकता है। अब यह देख लिया गया है कि राष्ट्रीयकृत अर्थ-व्यवस्था से एक नये वर्ग का उत्थान सम्भव है, जो राष्ट्रीयकृत सम्पत्ति के नियंत्रण पर, तथा उसके स्वामित्व में एक हिस्से पर भी, एकाधिकार रक्खे। पूंजीवादी वर्ग के सदस्यों की तरह, विशिष्ट कारख़ानों और वर्कशॉपों और खदानों पर स्वामित्व रखने के बजाय, कर्मचारियों तथा व्यवस्थापकों का यह वर्ग, राज्य के समस्त कारख़ानों और खदानों में हिस्से बँटाता है। मज़दूरों को तो पहले की ही तरह वेतन मिलता है, किन्तु निजी पूंजीपतियों की जगह, इस विशेष-सुविधा-प्राप्त नये वर्ग द्वारा राजकीय ऋण-पत्रों पर ब्याज के रूप में अब मुनाफ़े लिये जाते हैं। उत्पादन का तो समाजीकरण कर दिया गया है, पर वितरण का नहीं। धनिकतंत्र की जगह समाजवाद ने नहीं, बल्कि नौकरशाही ने ले ली है। जन-साधारण पर अत्याचार और भी अधिक व्यापक हो गया है क्योंकि, जैसा कि त्रातस्की को यह देखने को जीवित रहना था: "ऐसे एक देश में जहाँ कि राज्य ही एक मात्र काम देने वाली संस्था है, वहाँ विरोध का अर्थ होता है भूख से घुल-घुल कर मर जाना। पुराना सिद्धांत—'जो काम नहीं करेगा उसे खाने को नहीं मिलेगा,' एक नये सिद्धांत द्वारा हटा दिया गया है-'जो आज्ञा नहीं मानेगा उसे खाने को नहीं मिलेगा।" अतएव बिना

राजनैतिक प्रजातन्त्र के साथ हुए उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, एक भिन्न प्रकार के शोषण की ओर ले जाता है। अब यह अधिकाधिक समझ में आने लगा है कि जो सब से अधिक महत्व का सवाल है वह संपत्ति पर क़ानूनी स्वामित्व उतना नहीं है, जितना कि उस पर राजनैतिक नियंत्रण। यदि ऐसा नहीं हो तो हिन्दुस्तान में रेलों के मौजूदा सरकारी स्वामित्व एवं व्यवस्था को समाजवादी ही मानना पड़ेगी।

अधिनायक-तंत्र से हो कर ?

मार्क्सवाद की दूसरी मान्यता जिसका पुनरावलोकन आवश्यक है, यह है कि 'सर्वाहारा का अधिनायक-तंत्र (अर्थात् सर्वाहारा की ओर से साम्यवादी दल का) समाजवाद तक पहुँचने के लिये एक संभव और दरअसल एक ज़रूरी संक्रांति की स्थिति है। कल्पना यह थी कि अपनी प्रयोजन-सिद्धि के बाद तानाशाही विलीन हो जायगी और सचमुच में, जैसा कि एन्जल्स का अनुसरण करते हुए लेनिन ने कहा—" राज्य-सत्ता तब विनष्ट हो जायगी। "

जिसकी उपेक्षा की गई थी वह इतिहास द्वारा सिद्ध यह सत्य था (लार्ड एक्टन के शब्दों में) कि, "सत्ता की प्रवृत्ति दुराचारी बनाने की है और निरंकुश सत्ता नितान्त दुराचारी बनाती है।" रूस में जहां सोवियत् सरकार द्वारा यह दावा किया जाता है कि एक वर्गहीन समाज अब तक तो प्राप्त भी किया जा चुका है, वहीं सरकार हर प्रकार की व्यक्तिगत आज़ादी पर से अपना दम घोंटने वाला पंजा ज़रा भी ढीला करने का कोई भी रुख़ ज़ाहिर नहीं करती, उसका 'विनष्ट हो जाना' तो दूर रहा ! न इस बात का ही कोई संकेत मिलता है

कि आने वाले सालों में किसी भी प्रकार के प्रजातंत्रीयकरण की अथवा उदार नीति अपनाने की संभावना है। जैसा कि प्रोफेसर एफ्० एच्० नाइट ने कहा है, "अधिकारान्वित लोगों की, ऐसे व्यक्ति होने की संभावना, जो अधिकार रखना व उसे प्रयोग करना पसन्द न करेंगे, ठीक वैसी ही संभावना है कि एक अत्यधिक कोमल-हृदय का व्यक्ति, उन बगीचों में जहां गुलामों से काम लिया जाता है, कोड़े मारने वाले मास्टर का काम कर सकेगा!"

मार्क्स के पहले की समाजवादी विचारधारा का, मार्क्सवादी बहुधा 'काल्पनिक-आदर्श' के रूप में ज़िक्र करते हैं। आश्चर्य होता है कि साम्यवादियों की इस प्रेरक श्रद्धा से अधिक काल्पनिक और भी कोई बात हो सकती है कि रूस के जैसी एक तानाशाही—जो पिछले छै या सात सालों में सत्ता के लिये हुए खूनी संघर्ष में अपने दल के ही लाखों राजनैतिक विरोधियों का 'काम तमाम' कर देने में नहीं हिचकी है—एक शुभ दिवस पर इस सत्य को सचेत हो कर समझ लेगी कि वह अपना ऐतिहासिक प्रयोजन पूरा कर चुकी है और उसे अब जी० पी० यू० का तथा राज्य के–जिसे तब 'विनष्ट हो जाना' चाहिये–समस्त बल-प्रयोग के साधनों का अन्त कर देना चाहिये! इसी को ले कर मेक्स ईस्टमेन यह ताना कसते हैं कि, "मार्क्स ने इस विचार को निरा काल्पनिक बताया था कि भले आदमी समाजवाद स्थापित कर सकते हैं। स्तालिनवादियों का सचमुच ही विश्वास है कि ऐसा करने के लिये बुरे आदमियों पर निर्भर रहा जा सकता है।"

तीसरी मार्क्सवादी मान्यता जो गत दो दशाब्दियों के पुनरावलोकन के सम्मुख टिकने में असमर्थ मालूम होती है, वह

यह है कि मज़दूर-वर्ग की सामूहिक स्वार्थ-वृत्ति को तथा उसकी सम्पत्तिशाली वर्गों के प्रति सामूहिक घृणा को उभाड़ कर समाजवाद हासिल किया जा सकता है। समाज में भिन्न-भिन्न वर्गों के बीच स्वार्थों के संघर्ष की बात तो निस्संदेह स्पष्ट ही है। लेकिन दुर्भाग्य से मज़दूरों की सामूहिक स्वार्थ-वृत्ति को की गई अपील, बहुधा ही उन्हें शोषण तथा अन्याय में शरीक हो जाने की ओर प्रवृत्त करती है। हम देख ही चुके हैं कि किस तरह से ब्रिटिश मज़दूर-वर्ग, साम्राज्य के मुनाफ़ों में थोड़ा सा हिस्सा दे दिये जाने पर मज़दूर-दल के ज़रिये साम्राज्य को अक्षुण्ण रखने में शरीक हो जाता है—उस साम्राज्य को जो विश्व-समाजवादी-व्यवस्था के एक दम विरोध में है।

इसके अलावा, क्या कभी भी कोई घृणा तथा स्वार्थ-वृत्ति को उभाड़ कर एक ऐसे श्रेष्ठ समाज को पा सकता है जो सहयोग और प्रेम पर आश्रित हो? यहां पर साध्य एवं साधनों की पूरी की पूरी उलझन आ जाती है। त्रातस्की, जो अपने समय के मुख्य मार्क्सवादियों में से एक थे, वर्ग-संघर्ष को "सब क़ानूनों का क़ानून" कहते थे। परन्तु विज्ञान हमें बतलाता है कि सब क़ानूनों का कोई क़ानून नहीं है।

यही एक विकल्प?

एक और भी विश्वास जो अभी तक भी सभी समाजवादियों का है वह यह कि पूँजीवाद का विकल्प सिर्फ़ समाजवाद ही है। मुझे स्वीकार करना ही चाहिये कि लगभग १९३७ या ३८ तक मैं भी इसी विचार का था। आपको किसी भी तरह पूँजीवाद को मिटा देना था और फिर जैसे रात्रि के बाद दिन आता है, समाजवाद का उदय होगा ही। पर क्या होगा ही? पुराने ढंग का पूँजीवाद बेकार हो गया है यह स्पष्ट है। पर क्या समाजवाद ही

निश्चित रूप से आयगा अथवा एक तीसरा ही 'कुछ' तो नहीं है जो सम्भवतः प्रकट हो जावे? यह प्रश्न है जो विचारकों के एक बढ़ते हुए सम्प्रदाय द्वारा पूछा जा रहा है। बर्नहाम की व्यवस्थापकीय क्रान्ति में सर्व श्रेष्ठ ढंग से इसे रखा गया है तथा इसका उत्तर दिया गया है। वे कहते हैं कि, "मार्क्सवादी दर असल निम्नोक्त त्रैविध्य-तर्क × को मानते हैं: चूँकि पूँजीवाद अब टिकने वाला नहीं है (जो कि हम मान लेते हैं) और चूँकि समाजवाद ही पूँजीवाद का एक मात्र विकल्प है, इसलिये समाजवाद ही आने को है। यह त्रैविध्य-तर्क बिल्कुल सही है लेकिन निष्कर्ष ज़रूरी तौर पर सत्य नहीं भी होता है जब तक कि दूसरा प्राक्कथन सही न हो और यही तो समस्या अभी झगड़े में है।"

न तो रूस और न जर्मनी ही शब्द के ठीक-ठीक अर्थ में आज पूँजीवादी देश हैं। जर्मनी के विषय में यदि आपको कुछ भी शक हो तो आप सिर्फ़ बर्नहाम की पुस्तक, पीटर ड्रूकर की एण्ड ऑफ इकनामिक मेन या फ्रेदा उत्ले की द ड्रीम वी लास्ट पढ़ लें। इकनॉमिस्ट के सम्पादक जिआफ्रे क्राउथर स्थिति को दो शब्दों में रखते हुए कहते हैं कि, "लगभग एकमात्र स्वतन्त्रता जो जर्मन मालिक को रह गई है वह फर्म की स्टेशनरी पर अपना नाम रखने भर की है।"

मुश्किल तो यह है, जैसा कि बर्नहाम ने कहा है रूस और जर्मनी दोनों ही जगह, "विचार-विज्ञान सम्बन्धी उद्देश्यों के लिये,

---

× त्रैविध्य-तर्क—तर्क का वह रूप जिसमें दो प्राक्कथनों के आधार पर, जिनमें से प्रथम मुख्य तथा द्वितीय सहायक होता है, एक तीसरा निष्कर्ष निकाला जाता है।

'समाजवाद' शब्द का, आज़ाद, वर्गहीन तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाज के ऐतिहासिक समाजवादी आदर्श से जुड़ी हुई सहायक लोक-भावनाओं का उपयोग करने के लिये और यह सत्य छिपाने के लिये कि व्यवस्थापकीय अर्थ-व्यवस्था असल में एक नई क़िस्म के शोषण करने वाले समाज का आधार है, प्रयोग किया जाता है।" और सब पाखंडों की तरह यह भी, दुर्गुणों द्वारा सद्गुणों को दिया गया सम्मान है और उस सीमा तक, प्रोत्साहन देने वाला है।

यह उसी प्रकार की स्थिति है, जैसी कि विलियम मौरिस, एक प्रमुख समाजवादी, के दिमाग़ में ज़रूर ही रही होगी, जब उन्होंने भविष्य-वक्ता की सी अन्तर्दृष्टि से लिखा, "मैंने इन सब बातों पर खूब गौर किया है कि आदमी कैसे लड़ते हैं और युद्ध में हारते हैं तथा जिस बात के लिये वे लड़े थे वह उनकी हार के बावजूद भी हो जाती है और जब वह होती है तब वह 'वह' नहीं होती जिससे कि उनका मतलब था और जिससे उनका मतलब रहा था उसके लिये तब दूसरे आदमियों को दूसरे नाम से लड़ना पड़ता है।"

क्या तब यह सम्भव नहीं है कि पूँजीवाद के टूट जाने पर, समाजवाद का नहीं बल्कि, मालोताव के शब्दों में जिसे अपनी 'रुचि' के अनुसार—सर्वसत्तात्मवाद या फासिस्टवाद या हिटलरवाद या स्तालिनवाद—कहा जा सकता है, उसका प्रादुर्भाव होगा? यह इसलिये भी सम्भव प्रतीत होता है कि आम जनता बौद्धिक दृष्टि से अभी इतनी युक्त नहीं है कि एक अत्यन्त संगठित औद्योगिक राज्यतन्त्र का नियन्त्रण कर सके। इससे यह मतलब नहीं निकलता कि प्राचीन प्रतिक्रियात्मक नारे 'आप मानव-प्रकृति को नहीं बदल सकते' में कुछ भी तथ्य है!

मार्क्स ने इसकी जड़ पर ही कुल्हाड़ी मारी है जब वे कहते हैं, "सारा इतिहास मानव-प्रकृति के उन्नतिशील रूपान्तर के सिवाय और कुछ नहीं है।" मानव-प्रकृति सर्वदा से बदलती रही है और बदल रही है। जर्मनी और रूस में यह गत बीस वर्षों के दौरान में हमारी आंखों के सामने ही उद्दाम वेग से बदलती रही है। जो संदिग्ध है वह तो यह कि साधारण मानव-बुद्धि क्या इतनी विकसित हो गई है कि वह अपने निर्माण किये हुए यन्त्रों का साथ निभा सके व उन्हें नियन्त्रण कर सके? शायद इसी बात को अच्छी तरह समझ लेने के कारण जी० डी० एच० कोल ने कुछ ही वर्षों पहले न्यू स्टेट्समेन के स्तम्भों में एक सन्देह प्रकट किया था कि आया इंग्लैण्ड के सामान्य मनुष्य की बुद्धि एक ग्राम्य या शहरी ज़िला-परिषद से बड़ी किसी भी इकाई में कारगर प्रजातन्त्र को क़ायम रखने में समर्थ है या नहीं।

तब क्या प्रोफेसर हायेक की चुनौती देने वाली विवेचना का कोई उत्तर नहीं है कि यह सर्वात्मक योजना का तरीक़ा ही दासत्व का मार्ग है? किसी न किसी प्रकार के सर्व-सत्तात्मवाद को मंजूर कर के अथवा पुराने ढंग के पूँजीवाद की उलझन व अराजकता व अपव्यय के बने रहने में ही संतोष मान के क्या कोई असलियत तक पहुँचने की आशा ही छोड़ दे और वास्तविकता के साथ समझौता कर ले? क्या सचमुच ही हम में से प्रत्येक को इन्हीं में से कुछ चुनना होगा? मुझे तो यह लगता है कि इस पसन्दगी को मंजूर करना मानवात्मा के लिये अपनी पराजय मंजूर कर लेना होगा। यह तो एक उच्च आदर्श को समुद्र-गर्भ में डाल देना होगा—यह प्रतीत होने पर कि वह बिल्कुल समीप ही मालूम नहीं होता है। यह तो "कम बुराई" चुनने के विनाशकारी तर्क को अपनाना है। ऐसी किसी पसंदगी

को स्वीकार न करके ही मानव-प्राणी, आज तक के इतिहास में अपने साथियों को, तब तक अप्राप्त ऊँचाइयों की ओर ले गये हैं। विस्तृत सामाजिक उद्देश्यों के लिये संघर्ष करना, चाहे वे हमारे अपने जीवन-काल में प्राप्य हों या न हों, जीवन की एक विकास-प्राप्त धारणा का अंग है जिसे कि प्राचीन ग्रीक लोक "अच्छा जीवन" कहते थे। उन लोगों के तर्क के बजाय, जो नियोजित अर्थ-प्रणाली के लिये आज़ादी की भेंट देने को तैयार हैं, मैं उस मनुष्य की दलील पसन्द करूंगा, जिसने कहा, "मुश्किल के लिये मैं तुरन्त ही प्रयत्न करूंगा: असंभव के लिये कुछ देर बाद।"

मार्क्सिज़्म एन्ड डेमोक्रेसी में ल्यूसीं लौरेट लिखते हैं, "फासिज़्म या बोल्शेविज़्म' के मिथ्या द्वैत-संकट* को, जिसमें कि बहुत से लोग समकालीन विकास को रख देना चाहते हैं, मानने से हमें इन्कार है। ये दोनों ही अधिनायक-तंत्र एक ही नतीजे पर ले जाते हैं: एक गुट्ट द्वारा एक गुट्ट के स्वार्थों की दृष्टि से आर्थिक-संगठन का नियंत्रण। सिर्फ़ प्रजातंत्र ही इस ख़तरे के ख़िलाफ़ समाज को अभय दे सकता है।"

एक दूसरे लेखक पुष्टि करते हैं, "यंत्र-निर्माण-शाला एवं वेतन-सूचियों में परिणत, थोक-उत्पादन एवं थोक-नियंत्रण से आवृत इस दुनिया में समाजवादी राजनीति का चेहरा बदल गया है—ताकि अब विवाद समाजवाद और व्यक्तिवाद में नहीं है बल्कि अत्याचारी समाजवाद और स्वतंत्रात्मक समाजवाद में, फासिस्टवाद और प्रजातंत्र के मूल-मानों में है।

---

* द्वैत-संकट उस स्थिति को कहते हैं जब कि दो या अधिक समान बुराइयों में से एक को चुनना होता है—सांप छछूंदर जैसी स्थिति।

आज के प्रसंग में तो केवल वही समाजवादी है जो आज़ादी और नियोजित-अर्थ-व्यवस्था दोनों ही को प्राप्त करने का आग्रह रखता हो। ऐसे सभी लोगों के लिये उन मान्यताओं पर पुनर्विचार करना, जिन पर कि अभी तक रूढ़िवादी समाजवाद टिका हुआ रहा है और उन साधनों की पुनर्परिभाषा करना, जिनसे कि साध्य प्राप्त करने की आशा की जा सकती है, ज़रूरी हो गया है।

मार्क्सवाद की उन चार मान्यताओं की विवेचना, जो हमें ज़रूरी मालूम हुई है, वह उस ज़ोर को जिसे समाजवादियों को बीसवीं सदी के शेष भाग में डालना ही चाहिये, ज़रा हटा देने से अधिक शायद कुछ नहीं है। इस दृष्टि से देखने पर सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण या राजकीय स्वामित्व को यथा स्थान देने की निश्चित रूप से ज़रूरत है। अब, चूंकि यह देख लिया है कि जो मुख्य बात है वह स्वामित्व नहीं है बल्कि सम्पत्ति का नियन्त्रण है, राष्ट्रीयकरण 'वस्तु का गूदा' नहीं रह जाता है। इसके सिवाय यह भी तो है कि आया हम इसे चाहते हैं या नहीं। आर्थिक ज़रूरतें दृढ़ता-पूर्वक उस ओर लिये जा रही हैं। बात यह है कि राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में इसकी उलझनों का सामना करने के लिये तैयार हो जाना है और यह तै पा लेना है कि सामूहिक अर्थ-व्यवस्था का अनिवार्य्य परिणाम एक सर्व-सत्तात्मक राज्य-विधान तो नहीं होगा।

राज्य का स्वामी कौन है ?

प्रश्नों का प्रश्न यह है। सोवियत् जीवन के एक दशाब्दि के व्यक्तिगत निरीक्षण के पश्चात् विलियम च्० चेम्बरलेन ने लिखा है :

"एक प्रश्न, जिसका महत्व उस ठीक बिंदु से—जिस पर से आर्थिक जीवन में सार्वजनिक और निजी साहसों के बीच एक रेखा खींची जा सके–बहुत ही अधिक है, यह है कि आया राज्य की मालिक जनता है या जनता का मालिक राज्य है।" (ए फाल्स युटोपिया)

ठीक इसलिये कि सामूहिक अर्थ-व्यवस्था व्यक्तिगत आज़ादी और राजनैतिक प्रजातंत्र को खतरे में डालती है, इसे आने वाले वर्षों में समाजवाद के चित्र के ठीक मध्य में जगह देनी होगी। समाजवाद के खतरनाक स्थान यही हैं। सम्भवतः मानवीय व्यक्तित्व का आदर ही वह क्षेत्र होगा जिस पर बीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध के घोरतम् युद्ध होंगे और कोई भी ऐसा व्यक्ति समाजवादी कहे जाने का अधिकारी नहीं है जो मानवाधिकारों की रक्षा के लिये कमर न कस लेता हो।

साध्य और साधन

यदि व्यक्ति की आज़ादी और राजनैतिक प्रजातंत्र, समाजवाद के उतने ही आवश्यक अंग हैं, जितना कि आर्थिक समानता तो यह ज़रूरी है कि समाजवाद हासिल करने के तरीक़े भी साध्य के अनुकूल हों। इसके लिये इस साम्यवादी नारे को कि 'साध्य से साधन न्याय्य ठहरते हैं' मानने से इन्कार कर देना ज़रूरी है, क्योंकि इस नारे का अधिक स्पष्ट रूप से अर्थ यह है कि व्यवहार में प्रत्येक बात—मिथ्या-संभाषण, धोखा, खून—जब तक साम्यवादी दल की मदद करती है, उचित ही है। इसके लिये निष्ठुर वर्ग-घृणा तथा सैनिक सशस्त्र-क्रांतियों के तरीक़ों को और उनसे भी अधिक, विरोध के 'काम तमाम' करने के तथा स्तालिन् द्वारा अपनाये गए इतिहास के मिथ्यात्विकरण के

तरीक़ों को मानने से इन्कार कर देना भी ज़रूरी है। समाजवाद सिर्फ़ उजले उपायों व उजले हाथों से ही हासिल किया जा सकता है। न्याय की परिभाषा 'कार्यान्वित सत्य' यह उचित ही की गई है। बौद्धिक शुद्धता और सत्य-भक्ति के बिना हम विपथगामी हो जायंगे।

सेम्युअल टेलर कोलरिज ने एक शताब्दि पूर्व ही इस अवनति-क्रिया की भविष्य-वाणी कर दी थी जिसने अब साम्यवादी आन्दोलन को ग्रस लिया है, जब उन्होंने एक दूसरे प्रसंग पर लिखा, "जो व्यक्ति सत्य से बढ़ कर ईसाइयत को प्यार कर के चलता है, वह ईसाइयत से भी बढ़ कर, चर्च के अपने फ़िरके को प्यार करना आरम्भ कर देगा और उसकी परिणति अपने-आपको ही सबसे अधिक प्यार करने में होगी।"

क्या इसका यह अर्थ है कि हम फिर से सामाजिक-प्रजातंत्रवादियों की श्रेणियों में आ जांय और अपने को सिर्फ़ क़ानूनी और वैधानिक तरीकों तक ही सीमित रक्खें? यदि हम स्केन्डिनेवियन राज्यों सरीखे खरे प्रजातंत्रीय देशों में होते तो मेरा उत्तर संभवतः 'हाँ' होता। ऐसा करने में मैं सिर्फ़ कार्ल मार्क्स का ही तो अनुसरण करूंगा, जिन्होंने इंग्लैण्ड और अमेरिका और शायद हॉलैण्ड जैसे प्रजातंत्रीय देशों में शुद्ध वैधानिक परिवर्त्तनों के ज़रिये समाजवादी समाज उपलब्ध होने की सम्भावना को मान लिया था। परन्तु अधिकांश दुनिया प्रजातंत्रीय नहीं है और हमें तो इस देश में प्रजातंत्र की तथा थोड़ी सी भी व्यक्तिगत आज़ादी की झलक तक प्राप्त नहीं है।

नये हथियार

इसलिये हमारे जैसी स्थिति के लोगों के लिये, समस्या सामाजिक परिवर्त्तन के एक ऐसे तरीके को निकालने की प्रतीत

होती है जो गतिशील हो और फिर भी जो सशस्त्र सैनिक-क्रान्ति की और तानाशाही की (जो इसके बाद निश्चित है) हिंसा से बचाता हो । मेरा विश्वास है कि यहीं पर महात्मा गांधी की राजनैतिक विचार-धारा के विकास में कुछ देन है। प्रत्येक समाजवादी को, जो अपने शस्त्रालय को समृद्ध करना तथा अधिकाधिक समर्थ हथियार तैयार करना चाहता है जिनसे कि वह उन सामाजिक परिवर्त्तनों को ला सके जिन्हें वह लाना चाहता है, उसे ध्यान पूर्वक गांधीजी की देन का अध्ययन करना चाहिये ।

आर्थिक विचार-धारा की एक सुश्रृंखलित पद्धति के रूप में गांधीजी की शिक्षाएं गुंथी हुई नहीं हैं, और न हमें उन्हें बिना सोचे-विचारे ही मान लेने की ज़रूरत है; किन्तु यह ध्यान देना उचित है कि गांधीजी ने आर्थिक समानता के महत्व पर हमेशा ज़ोर दिया है। उन्होंने कहा है, "यह सारा का सारा (रचनात्मक) कार्यक्रम रेत पर बनी हुई एक इमारत के समान होगा, यदि आर्थिक समानता की ठोस नींव पर यह न बनाई गई।"

जहां तक अपने साध्य को प्राप्त करने के साधनों का सम्बन्ध है, मेरा विश्वास है, कुछ ऐसी बातें हैं जिनमें सहायता देने के लिये गांधीजी के पास कुछ महत्वपूर्ण सामग्री है। इनमें से पहली देन, सामूहिक सविनय-प्रतिरोध के शस्त्र का क्रमिक विकास है। जन-कार्य का वह स्वरूप क़ानूनी नुस्ख़ों और वैधानिक बारीकियों से नहीं, बल्कि स्वच्छ एवं अहिंसक तरीक़ों के प्रति आग्रह से सीमित है। इस कार्य-पद्धति का मुख्य गुण इस बात में उतना नहीं है कि इसमें परिवर्त्तन के विरोधियों का शारीरिक विनाश नहीं होता है (यद्यपि अपने-आप में यह भी

बहुत ही क़ीमती है) बल्कि इस बात में कि अप्रजातंत्रीय शक्तियों तक से संघर्ष करते समय भी इससे प्रजातंत्रीय वातावरण बनाये रखना सम्भव है। प्रजातंत्र सिर्फ़ एक प्रणाली ही नहीं बल्कि एक आदत भी है—इस महान सत्य को हृदयंगम कर लेने का यह द्योतक है। सविनय प्रतिरोध ऐसी प्रणाली है जो किसी अवसर विशेष पर असफल होने पर भी—जैसा कि हम अपने निज के अनुभव से जानते हैं—अधोगति व नैतिक पतन से बचा देती है, जो कि एक हिंसक विद्रोह के दबा दिये जाने पर घुस आते हैं। यदि एक बार यह मान लिया जाय कि हिंसक तरीक़ों से सत्ता प्राप्त करना, सम्भवतः हिंसा को आदत बनाने की ओर ले बढ़े,—इस परिणाम के साथ कि जिस उद्देश्य के लिये क्रान्ति की गई, रूस की तरह वह उद्देश्य रास्ते ही में खो जाय—तब इस निष्कर्ष को रोक रखना कठिन है कि इस बात में गांधी जी का मार्ग ऐसे एक देश की ज़रूरतों के लिये अधिक उपयुक्त है, जहां मत-पेटी प्राप्य नहीं है और जहां गोलियों से बचना ज़रूरी है। साम्यवादी एक लम्बे अर्से से कहता आ रहा है कि समाजवाद के बिना सच्चा प्रजातंत्र असम्भव है। अब गांधीजी बताते हैं कि न तो प्रजातंत्र ही और न समाजवाद ही, अहिंसक समाज के अतिरिक्त और कहीं सम्भव है।

विकेन्द्रिकृत अर्थ-व्यवस्था

एक और भी महत्वपूर्ण बात है जिस पर गांधीजी ने ध्यान खींचा है। वह उनका अर्थ-व्यवस्था के विकेन्द्रिकरण पर ज़ोर देना है। उनकी शिक्षा के इस अंग पर बहुधा 'फिर गांवों की ओर' की छाप लगाई गई है तथा उसकी बहुत ही तीव्र आलोचना की गई है।

इस प्रश्न पर गांधीजी के रुख के प्रति समाजवादियों को कैसा रुख ग्रहण करना चाहिये ? क्या उन्हें हम प्रचलित सज-धज से हीन एक सनकी समझें जो समस्त यंत्रों के सख्त विरोधी हैं और जो हमें उस बीते हुए भयानक युग की ओर लौटा ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं ? यदि सचमुच ही ऐसा हो तो हम गांधीजी के प्रधान-प्रधान उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के समर्थन को कैसे समझा सकते हैं ? गांधीजी ने कहा है, "मुझे तो यंत्रों के प्रति उन्माद रखने से विरोध है, न कि स्वयं यंत्रों ही से। चर्खा स्वयं ही एक छोटा सा उत्कृष्ट यंत्र है।" इसी प्रकार २२ जून १९३१ के हरिजन में लिखते हुए उन्होंने कहा है, "यदि हम हरेक ग्रामीण घर में बिजली पहुँचा सकें तो ग्रामवासियों का अपने औज़ारों तथा यंत्रों को बिजली से चलाना, मुझे बुरा न लगेगा।

"इने-गिने हाथों में शक्ति व सम्पत्ति केन्द्रित करने के उद्देश्य से मशीनरी का प्रयोग करना मैं अन्याय एवं पाप मानता हूं। आज मशीन का प्रयोग इसी तरह हो रहा है।" यह २० सितम्बर १९२५ के नवजीवन में गांधी जी ने लिखा था। समाजवादी इसके एक शब्द से भी क्या कुछ असहमत हो सकते हैं ?

अतएव गांधीजी की, बड़े पैमाने पर के यंत्रीकरण तथा उद्योगिकरण के प्रति सहानुभूति की कमी को कुछ तो मशीन के पूँजीवादी प्रयोग का विरोध तथा कुछ उस प्रवृत्ति की दवा, जो अपने परिणामों में समाज-विरोधी एवं अप्रजातंत्रीय है—और यह अब पश्चिमी समाज-विज्ञान-वेत्ताओं को भी प्रतीत होने लगा है—मानना अधिक ठीक होगा।

यदि कोई प्रसिद्ध अमेरिकन समाज-विज्ञानवेत्ता लेविस ममफोर्ड की दो मोटी पुस्तकें, जिनके नाम टेक्निक्स एन्ड सिवि-

लाइज़ेशन और द कल्चर ऑफ सिरीज़ हैं, पढ़े तो उसे मालूम होगा कि वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बड़े-बड़े कारख़ाने और बड़े-बड़े शहर अब पुरानी चीज़ें हो गई हैं। इन बुराइयों का वे 'दैत्यवाद' के नाम से ज़िक्र करते हैं जो उनके विचार से उन्नीसवीं शताब्दि के यंत्र-कला सम्बन्धी विकास की सीमा के अवशेष हैं। उनके अनुसार विद्युतिकरण तथा सामान्यिकरण विज्ञान की हाल ही की ऐसी दो उपलब्धियां हैं जो देहात भर में बिखरे हुए छोटे-छोटे उद्यान नगरों के छोटे-छोटे यंत्रालयों को, उद्योग-धंधों की तथा समाज की अत्यन्त ही उपयुक्त निरोग एवं स्वास्थ्यवर्द्धक इकाइयां बना देते हैं। 'अमेरिकन अस्थायी राष्ट्रीय आर्थिक परिषद' (१९४१) की रिपोर्ट भी इसे पुष्टि करती हुई मालूम होती है जब वह यह कहती है, "बड़े-बड़े संस्थापनों की श्रेष्ठतर उपयोगिता प्रदर्शित नहीं हुई है।"

मानव बुद्धि के वर्त्तमान विकास को ध्यान में रखते हुए, जो जी० डी० एच० कोल के पूर्व उद्धृत कथन से प्रकट होता है, यह कहीं बहुत अधिक संभव लगता है कि नौकरशाही के और सर्वसत्तात्मक तानाशाही के अपने ख़तरों को लिये हुए केन्द्रित उद्योगों की एक अत्यधिक सामूहिक व्यवस्था की अपेक्षा 'एक सामान्य मनुष्य के संसार की सीमाएँ उसके निज के समीप खींचती हुई' सहकारी आधार पर उद्योग-धन्धों की एक विकेन्द्रिकृत व्यवस्था का परिणाम लेनिन के स्वप्नों का 'आज़ाद और बराबर का समाज' होगा। जिस सीमा तक समाजवाद का उद्देश्य लोगों के दिमाग़ों को 'शासक-शासित' मनोदशा से छुट्टी दिला देना है, उसकी यह सफलता शासन की छोटी-छोटी भौमिक इकाइयों में अधिक सरल होगी जहां कि हुकूमत के लिये तो कम स्थान होगा और खुले सहयोग के लिये अधिक। इसके अतिरिक्त, इस द्वितीय महायुद्ध में मुख्य-मुख्य क्षेत्रों में

केन्द्रित, महत्वपूर्ण औद्योगिक लक्ष्यों पर हुई क्रूर बम-वर्षा ने बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों पर असर डालने वाली यंत्र-कला सम्बन्धी तथा युद्ध-कौशल सम्बन्धी ताज़ा समस्याओं की एक अनुक्रमणिका ही आज सामने ला दी है। इतिहास की एक विडम्बना से ही शायद बम-वर्षा का यह युग, छोटी छोटी विकेन्द्रिकृत औद्योगिक इकाइयों के लिये रास्ता बना रहा है। शायद अन्त में, पुरातन काल की गई-बीती वस्तु होना तो दूर रहा, गांधीजी इस विषय में अपने समय के पश्चिमी विचारकों की सर्व सामान्य धारा से आगे ही सिद्ध होंगे। शायद अन्त में यह प्रतीत होगा कि उन्होंने उस व्यवस्थापकीय समाज से बच निकलने का मार्ग निर्देश कर दिया है, जिसके लिये बर्नहाम ने-अपने पश्चिमी वातावरण में सीमित रह कर-व्यर्थ ही खोज की है।

संक्रान्ति

मौजूदा हालत से समाजवादी समाज में संक्रांति कैसे उपलब्ध की जाय? अहिंसक सामूहिक-कार्यों से होने वाले परिवर्तनों का स्वरूप—जिनका उद्देश्य ऐसी अर्थ-व्यवस्था क़ायम करना है जिसका एक पर्याप्त भाग उत्पादन की छोटी-छोटी इकाइयों से बना हुआ हो,—अवश्य ही परिवर्तनों के उस स्वरूप से भिन्न होगा जो कट्टरपंथी समाजवादी सिद्धान्त के सामने रहते आये हैं। इनमें से भिन्नता की एक बात सम्पत्ति के स्वामित्व के प्रति रुख को ले कर है और यह सम्पत्ति का स्वामित्व ही मनुष्यों का पदार्थों के प्रति सामाजिक सम्बन्ध है। समाजवाद उस 'सम्बन्ध' के अन्दर क्रांति करना चाहता है। हम पहले देख चुके हैं कि आज जिस बात का महत्व सब से अधिक है वह स्वामित्व नहीं है बल्कि उत्पादन के साधनों का नियंत्रण है और

जैसा कि रूस में हुआ है, एक वर्गहीन समाज न पा कर भी एक पूर्णतः राष्ट्रीयकृत अर्थ-व्यवस्था पाई जा सकती है। समस्त निजी सम्पत्ति के हरण कर लेने के बजाय जो सूत्र गांधीजी ने हमारे सामने रखा है, वह सर्व साधारण के हित में संपत्ति के मालिकों का 'ट्रस्टीशिप' की धारणा के रूप में विदित है और जो प्रोत्साहक नैतिक दलील द्वारा तथा साथ ही राजकीय दबाव द्वारा फलित हो सकता है। ऐसे 'ट्रस्टियों' की अधिक से अधिक आय जिसकी उन्हें अनुमति होगी, प्रचलित न्यूनतम के बारह गुने से अधिक नहीं होगी।

ऐसे आशावाद पर असीम घृणा उँडेली गई है जो धनिक वर्ग के लिये हृदय-परिवर्त्तन की बात सोच सकता है। मैं मानता हूं कि गत वर्षों में इसमें अपना छोटा सा भाग देने में मैं भी निर्दोष नहीं रहा हूँ। इस विश्व-पूँजीवाद के द्वारा की गई भयानक गड़बड़ के बाद, पूँजीपति को एक 'ट्रस्टी' के रूप में सोचने का ख्याल ही बहुत कुछ अखरता है। और न आशा करने के लिये ही कोई जगह होती यदि पूँजीपति को स्वच्छन्द विचारों एवं इच्छानुसार कार्य्य करने के अधिकारों के साथ हस्तक्षेप न करने की नीति में मनमानी करने को छोड़ दिया जाता। लेकिन गांधीजी का पूँजीपति 'ट्रस्टी' ठीक यही तो करने के लिये आज़ाद न होगा।

'ट्रस्टीशिप' से क्या तात्पर्य्य है इसकी कुछ विस्तृत छान-बीन, इस नारे को बहुत कुछ विशेष अर्थ प्रदान करती है। क़ानून के अनुसार 'ट्रस्टीशिप' ऐसी परिस्थियों में 'अ' द्वारा सम्पत्ति का स्वामित्व है कि वह सम्पत्ति को 'ब' के हितार्थ ही, जो उपभोक्ता कहलाता है, उपयोग करने को बाध्य है। यदि ट्रस्टी 'अ' अपने क़ानूनी स्वामित्व का उससे व्यक्तिगत फ़ायदा

उठाने के लिये दुरुपयोग करता है तो क़ानून ध्यान पहुँचा लेता है कि वह अधिकार-च्युत कर दिया जाय। 'अ' के साम्पत्तिक अधिकार मुँहफट शब्दों में, एक क़ानूनी कल्पना मात्र है। धनवानों के अधिकारों पर सामान्य रूप से इसे लागू करने पर 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त का आशय यह निकलता है कि राज्य सम्पत्ति के मौजूदा मालिकों को इस शर्त्त पर स्वामित्व रक्खे रहने की अनुमति दे दे कि वे सम्पत्ति का उपयोग सर्वसाधारण के हित व लाभ के लिये करें। कोई भी सम्पत्ति-स्वामी जो अपनी सम्पत्ति का उपयोग प्रधानतः निजी मुनाफ़े के लिये करेगा, उसे विश्वासघात करने की बुनियाद पर अधिकार-च्युत कर दिया जायगा। दूसरे शब्दों में यह ऐसी धारणा है कि जिसमें पूँजीपति को पंगु कर दिया जाता है। यह साम्पत्तिक अधिकारों की सारी की सारी पूँजीवादी धारणा का निराकरण है। मालिक को अपने कारख़ाने में उसी तादाद में तथा उसी किस्म का माल बनाना पड़ेगा, जिसके लिये राज्य उसे कहता है, अपने मज़दूरों को उसे राज्य की आज्ञानुसार मज़दूरी चुकानी पड़ेगी तथा अपने माल को उसे राज्य द्वारा नियत भावों पर ही बेचना पड़ेगा। उसे जो कुछ भी मिलेगा वह पांच या छः प्रतिशत लाभ होगा। क्या सम्पत्ति के ऐसे मालिक की स्थिति, सोवियत् रूस में जिसके पास राजकीय ऋणपत्र हैं और जो राष्ट्रीयकृत उद्योग-धन्धों के मुनाफ़ों से सात प्रतिशत ब्याज लेता है, मूलतः भिन्न है? और क्या गांधीजी का अधिकतम् व न्यूनतम् में १२ व १ का अनुपात रूस की मौजूदा ८० व १ की विषमता की तुलना में अच्छा नहीं है? मैं यह महसूस करने से अपने-आपको नहीं रोक सकता कि यदि कोई सिर्फ़ उलझनों की सीमाओं से बाहर आ जाय तो सत्य भिन्न नहीं है। उन लोगोंको जो 'ट्रस्टीशिप' के मार्ग को समाजवादी समाज के लिये

एक संक्रांति की स्थिति के रूप में काल्पनिक ही मानते हैं, मैं इस प्रश्न के द्वारा उत्तर दूंगा कि, "क्या सोवियत् अधिनायक तंत्र भी सामाजिक सम्पत्ति के 'ट्रस्टी' होने का दावा नहीं करता और क्या उस अधिनायक तंत्र से यह आशा करना कि जब उसका काम समाप्त हो जाय, वह अपने-आप का स्वेच्छा से अन्त कर दे और प्रजातन्त्र का पुनः स्थापन करे, काल्पनिक नहीं है ?" मैं यह महसूस करने से अपने-आपको नहीं रोक सकता कि इन दो में से गांधीजी का आशावाद किसी भी तरह अधिक निर्भय है।

अधिकांश मार्क्सवादी 'ट्रस्टीशिप' की धारणा को व्यंग पूर्ण घृणा के साथ हटा देते हैं क्योंकि वे उस भ्रम में सर खपाते रहते हैं, जिसकी लॉरेट 'काल्पनिक' के रूप में उचित ही अवहेलना करते हैं—

"कि पूँजीवादी दुनिया प्रति दिन 'त्त' और प्रति घंटे 'य' की ओर बढ़ रही है जब कि सर्वाहारा की शक्ति का अभ्युदय होगा, वह अपने शत्रुओं पर एक ही विनाशकारी चोट करेगा, अपना अधिनायक-तंत्र स्थापन करेगा और एक आदर्श समाजवादी समाज का निर्माण करेगा।.....एक विभाजक रेखा की स्थिति तो निश्चित ही है किन्तु वह प्रति दिन 'क्ष' और प्रति घंटे 'य' के द्वारा नहीं बताई जा सकती। इसके विरुद्ध, वह कई पीढ़ियों तक भी बढ़ सकती है। यदि हम मानते हैं कि समाजवाद की ओर प्रगति का तात्पर्य्य क्रम-क्रम से सामाजिककरण ही है तो आर्थिक व्यवस्था के उन क्षेत्रों में पूँजीवादी सम्पत्ति को अछूता छोड़ देने का विचार, जो अभी सामाजिककरण के लिये परिपक्व नहीं हैं, एक तर्क-संगत विकास ही

है। उन क्षेत्रों में पूँजीवाद के उठ जाने में अभी काफ़ी समय है। इन अवस्थाओं में बड़ी बात तो यह जानना है कि आया शब्द के परम्परागत अर्थ में वह आर्थिक व्यवस्था अब भी पूँजीवाद कही जा सकती है और किस सीमा तक वह व्यवस्था जिसमें हम आज रह रहे हैं, अब भी 'पूँजीवादी' नाम के योग्य है।"

स्वयं कार्ल मार्क्स ने ही पूंजीवादी व्यवस्था के ऐसे ही कुछ क्रमिक रूपान्तर का अनुमान कर लिया था, यह केपिटल के निम्नोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है।

"यह स्वयं पूँजीवादी उत्पादन के अन्दर ही उत्पादन के पूँजीवादी ढंग को त्याग देना है। एक आत्म-विनाशक विरुद्धता·····यह निजी उत्पादन है बिना निज सम्पत्ति के नियंत्रण के·····यह उत्पादन के पूँजीवादी ढंग की सीमाओं के अन्दर रह कर निजी सम्पत्ति का निग्रह है। पूँजीवादी साझा-पूँजी की कम्पनियां और इसी तरह सहकारी कारखाने, उत्पादन के पूँजीवादी ढंग से बदल कर एक सहकारी ढंग में संक्रांति के स्वरूप समझे जा सकते हैं—इस अन्तर के साथ कि एक में विरोध का ढंग निषेधात्मक रूप में मिलता है, दूसरे में निश्चयात्मक रूप में।"

लौरेट विवेचना करते हैं, "वे मध्यस्थ रूप, जिनका मार्क्स ज़िक्र करते हैं और जो उनके समय में सीधे-सादे और प्रारम्भिक दृश्य ही थे, आधुनिक अर्थ-व्यवस्था के प्रबल रूप हो गये हैं। हम सचमुच ही पूरी तरह से 'उत्पादन के एक नवीन रूप की संक्रांति' में हैं।" समाजवाद आज "एक ऐसा विचार है जो यथार्थ बनते जाने की क्रिया में है।"

कहने का तात्पर्य यह नहीं कि राष्ट्रीयकरण के तरीक़े की अवहेलना करने और उसकी जगह 'ट्रस्टीशिप' के तरीक़े को घुसेड़ने का कोई कारण है। सम्पत्ति के नियंत्रण और स्वामित्व के बीच पूर्वचयन के नवीन ज्ञान से जो कुछ अर्थ निकलता है वह यह है कि एक समाजवादी समाज तक संक्रांति में, मनुष्यों का पदार्थों के प्रति जो सम्बन्ध है उसके नाना रूप—राजकीय स्वामित्व, नगर-पालिका का स्वामित्व, औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी उत्पादकों की सहकारी समितियां या पञ्चायतें या प्रबन्ध-कारिणी सभाएँ तथा निजी स्वामित्व—आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपना-अपना भाग अदा करेंगे।

और जितने ही अधिक प्रतिबन्ध और समतुलन हों उतना ही अच्छा। हम आर्थिक क्षेत्र में उस विवेक का अच्छी तरह उपयोग कर सकते हैं जिसे अमेरिकन शासन-विधान के आदि निर्माताओं ने आज़ादी की रक्षा के लिये राजनैतिक प्रतिबन्धों व समतुलनों की एक पद्धति निकालने में प्रदर्शित किया था। 'ट्रस्टीशिप' की कल्पना का मूल्य उसकी निश्चयात्मकता में नहीं, बल्कि बहुत कुछ संक्रांति-कला के रूप में उसके लचीलेपन में है। वह दोषी को नष्ट करने या उसका 'काम तमाम' करने के पूर्व, सम्पत्ति के समाज-विरोधी उपयोग के दोषों को मिटाने के प्रयत्न करने के नैतिक व सामाजिक असल-मूल्य पर ज़ोर देती है। यदि वह और कुछ नहीं करती तो कम से कम सामाजिक परिवर्तनों के प्रति विरोध को कम-ज़ोर तो कर ही देती है। इससे स्पष्ट है कि जैसे-जैसे हम अपने उद्देश्य तक पहुँचने के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं, समयोचित नवीन बातें सिर्फ़ आवश्यक ही प्रतीत न हों बल्कि वांछित भी हो सकती हैं और यह कि समाज के परम्परागत आधारों के

सम्बन्ध में हठधर्मी की जगह प्रयोग करने की भावना को जगह देनी ही चाहिये।

राजनैतिक और आर्थिक विचारधारा के विकास में कार्ल-मार्क्स की भारी देन है। समाजवादी मत की सभी सम्प्रदायों ने उनकी विद्वत्ता के संपन्न स्रोत में जी भर-भर कर पान किया है और एक मात्र यही आशा की जा सकती है कि वे इतिहास पर अपनी गहरी छाप छोड़ जांय। परन्तु उनकी देन को एक कट्टर मत बना देने का—जैसा कि कोई चर्च किसी धार्मिक पैग़म्बर की शिक्षाओं को बना देता है—यह कोई कारण नहीं है। किसी महान व्यक्ति की आत्मा को दफ़ना देने का यह सब से निश्चयात्मक मार्ग है। "यन्त्र-कला में ऐसी क्रान्ति हो गई है जिसका मार्क्स को स्वप्नों में भी ध्यान न था।" मार्क्स की शिक्षाओं को एक 'मत' का रूप दे देना, एक ऐसे ही रूढ़ि-चुस्त नवीन धर्म की स्थापना करना है जिसे लेनिन ने 'जनता का अफ़ीम' कह कर तिरस्कृत किया था। मार्क्स स्वयं भी ऐसे 'मतवाद' के ख़तरों से अनभिज्ञ नहीं थे, जैसा कि उस उक्ति से मालूम होता है जो उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कही थी, "ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं मार्क्सवादी नहीं हूँ!

आज हमारे लिये मार्क्सवादी या उधर गांधीवादी होना कहीं बहुत कम ज़रूरी या वांछनीय है। क्या यही काफ़ी नहीं है कि हम समाजवादी हैं, कि हमारा उद्देश्य अब भी एक आज़ाद, प्रजातंत्रीय, वर्गहीन एवं अन्तर्राष्ट्रीय समाज है, जहां नियामक सिद्धान्त होगा, "प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार (काम लिया जाय), प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार (पारिश्रमिक दिया जाय)"? यदि उस उद्देश्य को प्राप्त करने में मदद करने के हमारे यत्नों के दौरान में हमें मालूम हो कि

महात्मा गांधी या किसी अन्य विचारक के पास प्रदान करने को कुछ है जो आज उतना ही उपयुक्त है जितना कि एक शताब्दि पहले मार्क्स ने जो कुछ हमें दिया वह था, तो हमें समाजवाद की तथा उसे प्राप्त करने के साधनों की अपनी धारणा में उसका समावेश करके प्रसन्नता पूर्वक उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहिये।

एक हँसोड़ ने कहा है कि आजकल "सारेवाद (isms) गतवाद (wasms) हो गये हैं।" निश्चय ही समाजवाद का यही हाल होने का खतरा है, यदि नवीनतर एवं दृढ़तर बुनियादों के आधार पर, वे व्यक्ति जो समाजवादी हैं, निरन्तर अपनी मान्यताओं का पुनर्परीक्षण और अपने आदर्श के प्रति अपना पुनरार्पण न करते रहें।

अध्ययन के लिये सुझाव

समाजवाद पर:

Lucien Laurat	.... Marxism and Democracy.
J. A. Schumpeter	.... Capitalism, Socialism & Democracy.
H. W. Laidler	.... History of Socialist Thought.
James Burnham	.... The Managerial Revolution.
	The Machiavellians.
Peter Drucker	.... The End of Economic Man.
	The Future of Industrial Man.
F. A. Hayek	... The Road to Serfdom.
F. Borkenav	... The Communist International.
Max Eastman	.... Marxism-Is It Science ?
E. F. M. Durbin	.... The Politics of Democratic Socialism.
Peter Kropotkin	.... Mutual Aid.
F. Longdon	.... Co-operative Politics.
	Inside Capitalist Society.

सोवियत् रूस पर:

Louis Fischer	.... Men and Politics.

Max Eastman	.... Stalin's Russia and the Crisis in Socialism.
Eric Strauss	.... Soviet Russia.
Leon Trotsky	.... Revolution Betrayed The Stalin School of Falsification.
Boris Souvarine	.... Stalin.
Arthur Koestler	.... Darkness at Noon.
Eugene Lyons	.... Assignment In Utopia. Stalin—Tsar of All The Russias.
Andre Gide	.... Return From The U.S S.R. Afterthoughts On The U. S. S. R.
Freda Utley	... The Dream We Lost.
Max Schactman	.... Soviet Trials.
Walter Krivitsky	.... I Was Stalin's Agent.
W. H. Chamberlin	.... A False Utopia.
Victor Serge	.... From Lenin To Stalin.
Anton Ciliga	.... Soviet Enigma.
L. E. Hubbard	... Soviet Trade and Distribution. Soviet Money and Finance. The Economics of Soviet Agriculture, Soviet Labour and Industry.

E. S. Bates .... Soviet Asia: Its Record and Its Problems.

Manya Gordon .... Workers Before And After Lenin.

Professor Florinsky.... Towards An Understanding of the U.S.S.R.

Professor Tchernavin I Speak For The Silent

Madame Tchernavin Escape From The Soviets

The Case of Leon Trotsky. (Being the Report of the Dewey Commission of Enquiry into the charges made against Leon Trotsky in the Moscow Trials)

——:o:——

विशिष्ट शब्द-कोष

ग्लॉसरी (Glossary)

अधिनायक (तानाशाह)	Dictator
अधिनायक तंत्र	Dictatorship
अराजकता	Anarchy
अराजकतावादी	Anarchist
अन्तर्राष्ट्रीय	International
अवनतिक्रिया	Deterioration
अनिष्ट घटना	Odins Phenomenon
अर्थ-व्यवस्था, अर्थ-प्रणाली	Economy
आत्म-विनाशक	Self destructive
इतिवृत्त	Records
उत्तरजीवी होना	To Survive
उद्योगीकरण	Industrialisation
एकतन्त्र-विरोधी	Anti-Totalitarian
एकाधिकृत	Monopolised
ऋण-पत्र	Bonds
कृत्रिम	Artificial
क्रान्ति	Revolution
काल्पनिक	Utopian
काल्पनिक आदर्श	Utopia
जनपद	Commonwealth
तर्क-सरणी	Thesis

तानाशाह (अधिनायक)	Dictator
तानाशाही (अधिनायक तंत्र)	Dictatorship
तिरस्कृत	Denounced
द्वैत-संकट	Dilemma
दूर-स्पर्शी	Far reaching
दासत्व मुक्ति	Emancipation
धारणा	Conception
निरंकुश शासन	Autocracy
नियामक सिद्धान्त	Ruling Principle
निश्चयात्मक	Positive
निषेधात्मक	Negative
नौकरशाही	Bureaucracy
प्रगतिशील	Progressive
प्रतिक्रांति	Counter Revolution
प्रतिक्रियात्मक	Reactionary
प्रतिनिधि	Representative
पृथक्करण	Secession
प्रजातन्त्रवाद	Democracy
प्रजातन्त्रीय	Democratic
परान्न भोजी	Parasitic Idlers
पारितोषिक	Premium
परिवर्त्तन-काल	Period of Transition
पुरोहित तन्त्रीय	Theocratic
पूँजी	Capital
पूँजीवाद	Capitalism
पूँजीवादी	Capitalist
पूर्व सूचक	Fore runner

फुटकर काम	Piece-work [वह कार्य-पद्धति जिसमें मजदूरी काम के अनुसार दी जाती है: दिन अथवा घण्टों पर नहीं।]
बहिष्करण	Isolation
बिना सोचे विचारे	Indiscriminately
बुद्धि जीवी	Intellectual
भावनात्मक	Emotional
भूमि-दासत्व	Serfdom
मध्यस्थ	Intermediary
माध्यमिक	Secondary
मिथ्यात्विकरण	Falsification
यन्त्रीकरण	Mechanisation
राष्ट्र	Nation
राष्ट्रीयता	Nationalism
राष्ट्रीयकृत	Nationalised
रूपांतरित	Modified
लाक्षणिक ढङ्ग से	Characteristically
वर्गहीन	Classless
विकल्प	Alternative (as a Noun)
वैकल्पिक	Alternative (as Adjective)
विकेन्द्रिकृत	Decentralised
विद्युतिकरण	Electrification
विरोध का ढंग	Mode of antigonism
वैधानिक तरीके	Constitutional methods
व्यावहारिक	Objectively
श्रमिक मोर्चा	Labour Front

शीघ्रगतिकरण-प्रणाली	Speed up system
समकालीन	Contemporary
सर्वसत्तात्मवाद	Totalitarianism
सर्वाहारा	Prolitariat
सर्वाहारा अधिनायकतन्त्र	Dictatorship of Prolitariat
समाजवाद	Socialism
समाजवादी	Socialist
साम्यवाद	Communism
साम्यवादी	Communist
सामाजिक	Social
सामाजिक प्रजातन्त्रीय	Social Democratic
सामाजिक प्रजातन्त्रवादी	Social Democrates
संचालक	Director
संतति-नियमन	Birth-Control
सामान्यिकरण	Standardisation
सामाजिकरण	Socialisation
सामूहीकरण	Collectivisation
सुश्रृङ्खलित पद्धति	Well-knit System
सैनिक-वृत्ति प्रधान	Militaristic
संक्रांति	Transition
स्तर	Strata
स्तरीकरण	Staratification
स्वीकारोक्तियाँ	Confessions
स्वशासित	Autonomous
स्पर्द्धात्मक	Competative

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१	१	केवल	—"केवल
२८	८	कि	×
२८	२५	down	dawn
३०	१७	व्यक्ति	व्यक्ति
३३	११	के	के।
३५	१४	कोप पत्रों	कोप-पात्रों
३५	२१	क्राँति	क्रांति
३७	७	प्र—श	प्रवेश
३७	११	गंधज़ार	गन्ध ज़ार
३८	२	परान्न मोजी	परान्न भोजी
४३	१७	वोभद	वोज्द
४५	११	माक्सवाद	मार्क्सवाद
४५	अन्तिम	शृंखलाएँ	शृंखलाएँ
४६	२०	भर हैं	पर हैं
४६	१२	मन्त्रि	मंत्री
५१	३	वाह्य	बाह्य
५८	३	अवाध्य	अबाध्य
६६	१०	बादी	वादी
८५	२३	सामाजिककरण	सामाजिकरण

ज्योतिर्लोक का आगामी प्रकाशन :

गाँधीवाद पर पुनर्विचार

★ ★ ★
★ ★
★

लेखक—

प्रो० एम्० एल्० दाँतवाला

मूल्य बारह आने

ज्योति

सुन्दर, ज्ञानवर्द्धक मासिक पत्र

वार्षिक मूल्य ४) एक किरण ।=)

सम्पादक—

'परदेशी' साहित्यरत्न